

\* ॐ श्रीपरमात्मने नमः \*

# कल्याण

मूल्य १० रुपये



वर्ष  
१२

गीताप्रेस, गोरखपुर

संख्या  
५

शेषावतार भगवान् बलराम



**COLLECTION OF VARIOUS**  
**-> HINDUISM SCRIPTURES**  
**-> HINDU COMICS**  
**-> AYURVEDA**  
**-> MAGZINES**

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

**Made with**



**By**

**Avinash/Shashi**

**I creator of  
hinduism  
server!**



**KAPWING**





शुक्लाम्बर शशिवर्ण भगवान् विष्णु

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥



# कल्याण

वन्दे वन्दनतुष्टमानसमतिप्रेमप्रियं प्रेमदं पूर्णं पूर्णकरं प्रपूर्णनिखिलैश्वर्यैकवासं शिवम् ।  
सत्यं सत्यमयं त्रिसत्यविभवं सत्यप्रियं सत्यदं विष्णुब्रह्मानुतं स्वकीयकृपयोपात्ताकृतिं शङ्करम् ॥

वर्ष  
९२

गोरखपुर, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, मई २०१८ ई०

संख्या  
५

पूर्ण संख्या १०९८

## शुक्लाम्बर शशिवर्ण भगवान् विष्णुका ध्यान

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।

प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥

लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः ।

येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥

[ब्रह्माजी देवताओंसे भगवान् विष्णुके स्वरूपका वर्णन करते हुए कहते हैं—  
हे देवताओ!] ‘भगवान् विष्णु श्वेत वस्त्र धारण किये हुए हैं, चार भुजाओंसे विभूषित  
हैं, उनके दिव्य श्रीअंगकी कान्ति चन्द्रमाके समान गौर है तथा मुखपर सदा प्रसन्नता  
छायी रहती है। सारे विघ्नोंकी शान्तिके लिये ऐसे श्रीहरिका ध्यान करे। ऐसे नील-  
कमलके समान श्यामसुन्दर हरि जिनके हृदयमें विराजमान रहते हैं, उन्हींको लाभ होता  
है, उन्हींकी विजय होती है। उनकी पराजय कैसे हो सकती है? [स्कन्दपुराण-आवन्त्यखण्ड]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर ज्येष्ठ, वि० सं० २०७५, श्रीकृष्ण-सं० ५२४४, मई २०१८ ई०

## विषय-सूची

| विषय                                                              | पृष्ठ-संख्या | विषय                                                                 | पृष्ठ-संख्या |
|-------------------------------------------------------------------|--------------|----------------------------------------------------------------------|--------------|
| १- शुक्लाम्बर शशिवर्ण भगवान् विष्णुका ध्यान.....                  | ३            | १७- सत्यका स्वरूप                                                    |              |
| २- कल्याण.....                                                    | ५            | (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज) .....              | २५           |
| ३- शेषावतार भगवान् बलराम [आवरणचित्र-परिचय] .....                  | ६            | १८- दयालु दीनबन्धुके बड़े विशाल हाथ हैं [एक सत्य घटना]               |              |
| ४- परमात्माकी प्राप्तिके लिये निराश नहीं होना चाहिये              |              | (श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट) .....                                         | २७           |
| (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका) .....              | ७            | १९- संस्कृति की दो धाराएँ [पर्यावरण-चिन्तन]                          |              |
| ५- विचारोंपर नियन्त्रण                                            |              | (श्रीनन्दलालजी टाँटिया) .....                                        | २८           |
| (पं० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम०ए०, बी०टी०) .....                   | ९            | २०- मेरे माँझी! (श्रीइन्द्रचन्दजी तिवारी) .....                      | ३०           |
| ६- जीवकी तृप्ति कैसे हो?                                          |              | २१- भारतीय संस्कृतिमें पशु-पक्षियोंका महत्त्व                        |              |
| (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) .....    | १०           | (श्रीइन्द्रलालजी शास्त्री विद्यालंकार) .....                         | ३१           |
| ७- दूसरोंकी तृप्तिमें तृप्ति [प्रेरक-प्रसंग] .....                | १२           | २२- जो तोकों काँटा बुझे, ताहि बोझ तू फूल! [प्रेरक-प्रसंग] .....      | ३४           |
| ८- रामकथाके श्रवणका उद्देश्य (मानस-मर्मज्ञ पं० श्रीरामकिंकरजी     |              | २३- लक्ष्मी कहाँ रहती हैं?                                           |              |
| उपाध्याय) [प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता] .....                     | १३           | (धर्मभूषण पं० श्रीमुकुटविहारीलालजी शुक्ल) .....                      | ३५           |
| ९- रामकथाकी महिमा .....                                           | १४           | २४- भगवान् नारायणका भजन ही सार है .....                              | ३७           |
| १०- निष्कामतासे लाभ और सकामतासे हानि [साधकोंके प्रति]             |              | २५- सिद्धावधूत श्रीदयालदास स्वामी .....                              | ३८           |
| (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज) .....          | १५           | २६- संतोंके लक्षण .....                                              | ३९           |
| ११- मुक्तिके प्रति भी निष्कामता [प्रेरक-प्रसंग] .....             | १६           | २७- 'गोषु पाप्मा न विद्यते' [कहानी] (श्रीसुदर्शनसिंहजी 'चक्र') ..... | ४०           |
| १२- हमारा दुःख कैसे दूर हो? (स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज) .. | १७           | २८- गौ-महिमा .....                                                   | ४२           |
| १३- पर हित सरिस धर्म नहीं भाई (श्रीसीताराम गुप्ताजी) .....        | १८           | २९- साधनोपयोगी पत्र .....                                            | ४३           |
| १४- मैडम ब्लैवट्स्कीकी परदुःखकातरता [प्रेरक-प्रसंग] .....         | १९           | ३०- व्रतोत्सव-पर्व [ज्येष्ठमासके व्रत-पर्व] .....                    | ४५           |
| १५- साधन-सूत्र (आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा) .....              | २०           | ३१- कृपानुभूति .....                                                 | ४६           |
| १६- पवनसुतके लंका-प्रवासकी एकादश उपलब्धियाँ                       |              | ३२- पढ़ो, समझो और करो .....                                          | ४७           |
| (डॉ० श्रीगार्गीशरण मिश्रजी 'मराल') .....                          | २१           | ३३- मनन करने योग्य .....                                             | ५०           |

## चित्र-सूची

|                                              |                |            |
|----------------------------------------------|----------------|------------|
| १- शेषावतार भगवान् बलराम .....               | (रंगीन) .....  | आवरण-पृष्ठ |
| २- शुक्लाम्बर शशिवर्ण भगवान् विष्णु .....    | ( " ) .....    | मुख-पृष्ठ  |
| ३- शेषावतार भगवान् बलराम .....               | (इकरंगा) ..... | ६          |
| ४- सिद्धावधूत श्रीदयालदास स्वामी .....       | ( " ) .....    | ३८         |
| ५- युधिष्ठिरकी सभामें दुर्योधनका गिरना ..... | ( " ) .....    | ५०         |

एकवर्षीय शुल्क

₹ २५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनंद भूमा जय जय॥  
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥  
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

विदेशमें Air Mail }  
शुल्क }

वार्षिक US\$ 50 (₹ 3000)  
पंचवर्षीय US\$ 250 (₹ 15000)

{ Us Cheque Collection  
{ Charges \$6 Extra

पंचवर्षीय शुल्क

₹ १२५०

संस्थापक — ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका

आदिसम्पादक — नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

सम्पादक — राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक — डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : [gitapress.org](http://gitapress.org)

e-mail : [kalyan@gitapress.org](mailto:kalyan@gitapress.org)

09235400242/244

सदस्यता-शुल्क — व्यवस्थापक — 'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस — २७३००५, गोरखपुर को भेजें।

Online सदस्यता-शुल्क - भुगतानहेतु- [gitapress.org](http://gitapress.org) पर Online Magazine Subscription option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क [kalyan-gitapress.org](http://kalyan-gitapress.org) पर निःशुल्क पढ़ें।

## कल्याण

**याद रखो**—तभीतक तुम्हारा निर्णय भ्रमपूर्ण, संदिग्ध और परिणाममें हानिकारक होता है, जबतक कि तुम्हारे मनमें काम, क्रोध, लोभ, स्वार्थ, घृणा, द्वेष, अभिमान, भय, प्रतिशोधकी भावना, बैर और हिंसादि दोष वर्तमान हैं और भगवान्की दिव्य वाणीकी स्फुरणाके लिये खुला मार्ग नहीं है।

**याद रखो**—जब तुम मनको इन दोषोंसे मुक्तकर भगवान्की कृपाके प्रकाशसे भर लोगे और शुद्ध भगवदीय विचार, जिनमें आगे-पीछे सर्वत्र पर-हितकी भावना भरी होगी, तुम्हारे मनको छा लेंगे, तब तुम्हारा जो कुछ भी निर्णय होगा, वह निश्चिन्त सत्य और परिणाममें हितकारक होगा।

**याद रखो**—व्यक्तिगत स्वार्थ मनुष्यके ज्ञानको हरकर उसे अन्धा बना देता है, फिर उसकी बुद्धिपर पर्दा पड़ जानेके कारण वह यथार्थ निर्णय नहीं कर सकता। जो बुद्धि स्वार्थसे ढकी नहीं होती, उसीके द्वारा भगवान्के ज्ञानका प्रकाश होता है।

**याद रखो**—जिस हृदयमें नित्य-निरन्तर भगवान् विराजित रहते हैं, उस हृदयमें दैवीसम्पत्तिके गुण—त्याग, क्षमा, वैराग्य, निःस्वार्थभाव, प्रेम, सहृदयता, विनय, निर्भयता, सहिष्णुता, स्नेह और अहिंसा आदि—स्वाभाविक ही रहते हैं और वहींसे भगवान्की दिव्य वाणी स्फुरित हुआ करती है।

**याद रखो**—जब तुम्हारा मन भगवदीय सत्यको प्राप्त करनेके लिये उत्सुक तथा उन्मुक्त होगा, तब उसमें स्वयं ही उस सत्यका प्रकाश होगा और तब जो कुछ निर्णय होगा, वह सत्य ही होगा।

**याद रखो**—जब तुम्हारे हृदयमें दूसरोंका हित ही अपने हितके रूपमें प्रकट होगा, तब उसमें स्वाभाविक वही विचार आयेंगे, जो पर-हितकारक

होंगे और तदनुसार ही निर्णय होगा और जिस निर्णयमें परहित भरा है, उस निर्णयसे परिणाममें अपना अहित कभी हो ही नहीं सकता।

**याद रखो**—जब मनुष्यके हृदयमें भगवत्प्रेमका प्रादुर्भाव होता है, तब उसको जगत्में कोई पराया दीखता ही नहीं। ऐसी अवस्थामें उसका स्वार्थ भी विस्तृत हो जाता है। फिर वह जगत्के भलेमें ही अपना भला देखता है, किसी एक क्षुद्र प्राणीका अहित भी उसे सहन नहीं होता। इस प्रकारके प्रेमका प्रकाश स्वार्थके अन्धकारको सर्वथा नष्ट कर देता है। फिर उस प्रकाशमें जो कुछ निर्णय होता है, वह सर्वथा मंगलमय होता है।

**याद रखो**—जब तुम भगवान्की इच्छामें अपनी इच्छा मिला दोगे, तभी तुम्हारा निर्णय निष्पक्ष निश्चिन्त होगा।

**याद रखो**—भगवान्की इच्छासे विरुद्ध इच्छा रखनेवालेकी इच्छा कभी सफल तो होती ही नहीं, पद-पदपर उसे असफलता, निराशा और वेदनाका सामना करना पड़ता है। उसका प्रत्येक निश्चय, प्रत्येक विचार भ्रान्त और परिणाममें पीड़ादायक होता है तथा उसका जीवन नित्य अशान्तिमें ही बीतता है।

**याद रखो**—तुम यदि अपनेको भगवान्के प्रति सौंप देते हो, अपनी इच्छाओंको भगवान्की इच्छामें मिला देते हो एवं अपने ज्ञान और बलको भगवान्के ज्ञान और बलका अंश मान लेते हो तो निश्चय समझो फिर तुम भगवान्की मंगलमयी इच्छासे मंगलमय बनकर, भगवान्के नित्य सत्य ज्ञान और अचिन्त्य अपरिमित बलसे सुरक्षित होकर केवल अपना ही कल्याण नहीं करोगे; तुम्हारा प्रत्येक विचार, तुम्हारा प्रत्येक निश्चय और तुम्हारी प्रत्येक क्रिया अखिल जगत्का मंगल करनेवाली होगी। 'शिव'

## शेषावतार भगवान् बलराम



जब कंसने देवकी-वसुदेवके छः पुत्रोंको मार डाला, तब देवकीके गर्भमें भगवान् बलराम पधारे। योगमायाने उन्हें आकर्षित करके नन्दबाबाके यहाँ निवास कर रही श्रीरोहिणीजीके गर्भमें पहुँचा दिया। इसीलिये उनका एक नाम संकर्षण पड़ा। बलवानोंमें श्रेष्ठ होनेके कारण उन्हें बलभद्र भी कहा जाता है।

श्रीकृष्ण-बलराम परस्पर अभिन्न हैं। उनकी लीलाएँ भी एक-दूसरेसे संयुक्त हैं। श्रीमद्भागवतमें बहुत कम लीलाएँ ऐसी हैं, जहाँ श्रीकृष्णके साथ उनके अग्रज श्रीबलराम नहीं रहे हैं। गोकुल और वृन्दावनकी लीलाओंमें भी प्रायः श्रीकृष्ण-बलराम साथ-साथ ही रहे हैं। एक दिन जब बलराम और श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ वनमें गौएँ चरा रहे थे, तब ग्वालके वेषमें प्रलम्ब नामक एक असुर आया। उसकी इच्छा श्रीकृष्ण और बलरामका अपहरण करनेकी थी। भगवान् श्रीकृष्ण उसे देखते ही पहचान गये। फिर भी वे उसकी मित्रताका प्रस्ताव स्वीकार करके उसे खेलमें सम्मिलित कर लिये। प्रलम्बासुरने देखा कि श्रीकृष्णको हराना कठिन है। इसलिये वह बलरामजीको अपनी पीठपर बैठाकर भाग चला। बलरामजी साक्षात् शेषावतार थे। उन्होंने देखा कि यह असुर मुझे आकाश-मार्गसे लिये जा रहा है। इस उन्होंने उसके पिछा करके अंत में बलराम

जमाया। बलरामजीके वज्रके समान प्रहारसे प्रलम्बासुरका सिर चूर-चूर हो गया। वह अत्यन्त भयंकर शब्द करता हुआ प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। प्रलम्बासुर मूर्तिमान् पाप था। उसकी मृत्युसे देवता प्रसन्न हो गये। वे बलरामजीको साधुवाद देते हुए उनपर आकाशसे पुष्पवृष्टि करने लगे। यह घटना बलरामजीके अतुलित शौर्यकी साक्षी है।

बलरामजी बचपनसे ही अत्यन्त गम्भीर और शान्त थे। श्रीकृष्ण उनका विशेष सम्मान करते थे। बलरामजी भी श्रीकृष्णकी इच्छाका सदैव ध्यान रखते थे। ब्रजलीलामें शंखचूड़का वध करके श्रीकृष्णने उसका शिरोरत्न बलराम भैयाको उपहारस्वरूप प्रदान किया। कंसकी मल्लशालामें श्रीकृष्णने चाणूरको पछाड़ा तो मुष्टिक बलरामजीके मुष्टिप्रहारसे स्वर्ग सिधारा। जरासन्धको बलरामजी ही अपने योग्य प्रतिद्वन्द्वी जान पड़े। यदि श्रीकृष्णने मना नहीं किया होता तो बलरामजी प्रथम आक्रमणमें ही उसे यमलोक भेज देते। बलरामजीका विवाह रेवतीसे हुआ था। वे सत्ययुग-कालकी कन्या थीं और आकारमें द्वापरके बलरामजीसे काफी लम्बी थीं। छोटे भाई श्रीकृष्णको परिहास करते देखकर उन्होंने रेवतीजीको अपने अनुरूप कर लिया। रुक्मिणी-हरणमें शिशुपाल तथा उसके साथी अपने सैन्यसमूहके साथ बलरामजीके द्वारा ही पराजित हुए। श्रीकृष्णके पुत्र साम्बने जब दुर्योधनकी कन्या लक्ष्मणाका हरण किया, तब छः महारथियोंने एक साथ मिलकर उन्हें बन्दी बना लिया। उस समय बलरामजी अकेले ही हस्तिनापुर पहुँच गये। यदि दुर्योधन लक्ष्मणाका साम्बसे विवाह करनेके लिये तैयार न होता तो बलरामजी पूरे हस्तिनापुरको अपने हलसे खींचकर यमुनाजीमें डुबा देते। नैमिष-क्षेत्रमें बलरामजीने इल्वल राक्षसके पुत्र बल्वलको मारकर ऋषियोंको भयमुक्त किया। महाभारतके युद्धमें बलरामजी तटस्थ होकर तीर्थयात्राके लिये चले गये। यदुवंशके उपसंहारके बाद उन्होंने समुद्रतटपर आसन लगाकर अपनी लीलाका संवरण किया। श्रीमद्भागवतकी कथाएँ

# परमात्माकी प्राप्तिके लिये निराश नहीं होना चाहिये

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

बहुत-से भाई परमात्माकी प्राप्तिके लिये यथासाध्य साधन करते हैं, पर बहुत समयतक साधन करनेपर भी जब परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती, तब निराश हो जाते हैं, पर वे सज्जन निराश न होकर यदि परमात्माकी प्राप्ति न होनेका कारण खोजें तो उन्हें पता लगेगा कि श्रद्धा, प्रेम तथा आदरपूर्वक और तत्परताके साथ साधन न करना ही इसमें प्रधान कारण है। जिस प्रकार लोभी मनुष्य धनकी प्राप्तिके लिये पूरी तत्परताके साथ प्रयत्न करता है, अपना सारा समय, समस्त बुद्धिकौशल धनकी प्राप्तिके प्रयत्नमें ही लगाता है तथा नित्य सावधानीके साथ ऐसा कोई भी काम नहीं करता, जिससे धनकी तनिक भी क्षति हो। इसी प्रकार यदि श्रद्धा, प्रेम तथा आदरके साथ पूर्ण तत्परतासे साधन किया जाय तो इस युगमें परमात्माकी प्राप्ति बहुत शीघ्र हो सकती है।

आत्माके उद्धार या परमात्माकी प्राप्तिमें अबतक जो विलम्ब हुआ, उसे देखकर कभी निराश नहीं होना चाहिये वरन् भगवान्‌के विविध आश्वासनोंपर ध्यान देकर विशेषरूपसे साधनमें प्रवृत्त होना चाहिये। भगवान्‌ने कहा है कि यदि मरते समय भी मनुष्य मेरा स्मरण कर ले तो उसे मेरी प्राप्ति हो सकती है—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।

यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८।५)

‘जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझ (भगवान्‌)-को ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्यागकर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।’

पापी-से-पापीका तथा मूर्ख-से-मूर्खका भी उद्धार परमात्माके यथार्थ ज्ञानसे और परमात्माकी भक्तिसे शीघ्र हो सकता है। भगवान्‌ कहते हैं—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।

सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि॥

(गीता ४।३६)

यदि तू अन्य सब पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाला है, तो भी तू ज्ञानरूप नौकाद्वारा निःसन्देह

सम्पूर्ण पाप-समुद्रसे भलीभाँति तर जायगा।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।

साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९।३०)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने-योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमात्माके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है।

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९।३१)

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता है।

उस यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति भी ईश्वर, महात्मा, परलोक और शास्त्रपर विश्वास होनेसे सहज ही हो सकती है। गीतामें भगवान्‌ने बतलाया है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४।३९)

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान्‌ मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

जो मनुष्य ध्यानयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि कुछ भी नहीं जानता, ऐसे अविवेकी मनुष्यका भी सत्पुरुषोंका संग करके उनके आज्ञानुसार साधन करनेपर उद्धार हो सकता है। भगवान्‌ कहते हैं—

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।

तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३।२५)

परंतु इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्द बुद्धिवाले पुरुष हैं, वे इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते







## जीवकी तृप्ति कैसे हो ?

(नित्यलीलालानि श्रद्धेय भाइजी श्रीहनुमानप्रसादजी पादार)

जोव सदा ही अतृप्त है। साधारण काट-पतंगस लेकर बड़े-बड़े सम्राट् तक सभी किसी-न-किसी अभावका अनुभवकर सदा दुखी रहते हैं। कोई कितनी भी सांसारिक सम्पत्तिका या कितने ही उच्च पदका अधिकारी क्यों न हो, अपनी स्थितिसे सन्तुष्ट नहीं है, उसके हृदयमें किसी वस्तुकी कमी सदा खटकती है—वह कुछ और चाहता है। बड़े-बड़े देवताओंकी भी यही दशा सुनी जाती है।

जहाँ अतृप्ति है, अभावकी वेदना है, वहीं चित्त

चंचल और अशान्त है; जिसका चित्त अशान्त है, वही दुखी है; क्योंकि 'अशान्तस्य कुतः सुखम्।' (गीता २।६६)

यह अतृप्ति तबतक नहीं मिट सकती, जबतक कि

जीव किसी ऐसी परम वस्तुका न प्राप्त कर ले, जिसका सत्तासे समस्त अभावोंका सर्वथा अभाव हो जाता है—जो सर्वथा पूर्ण हो। विवेकबुद्धि बतलाती है कि ऐसी परम वस्तु एक परमात्मा ही है, जो सदा एकरस रहता है, उसके सिवा अन्य सभी वस्तुएँ किसी-न-किसी अभावसे युक्त एवं परिणाममें विनाशी हैं और प्रतिक्षण विनाशकी ओर अग्रसर हो रही हैं। ऐसी विनाशशील अपूर्ण वस्तुओंसे जीवका पूर्णकाम होना कभी सम्भव नहीं। इसलिये जीव नित्य अतृप्त है और वह संसारकी सभी वस्तुओंको ‘यह भी वह नहीं है’, ‘इसमें भी वह नहीं है’, यों ‘नेति-नेति’ कहता हुआ उनमें अपनी इच्छित वस्तु न पाकर स्वभावसे ही उस अभावरहित नित्य वस्तुकी ओर अग्रसर हो रहा है।

इतनी हानिपर भी कभी-कभी प्रेमवश जीव सासारिक पदार्थोंमें सुखकी कल्पनाकर अपने लक्ष्यको भूल जाता है। ऐसे मनुष्य बहुत ही थोड़े हैं, जो नचिकेता और प्रह्लादकी भाँति जगत्के समस्त प्रलोभनोंको पददलितकर पूर्णकी प्राप्तिके लिये बद्धपरिकर हो चुके हों। हजारोंमेंसे कोई एक इस प्रकार प्रयत्न करना चाहता है, वैसे हजारोंमें कोई एक प्रयत्न करता है और प्रयत्न करके बलि

लागाम भी कोई बिरला ही शेषतक अपने लक्ष्यपर स्थिर रह सकता है। अधिकतर लोग तो अपने मतको सर्वश्रेष्ठ मानकर दूसरोंकी निन्दा करने लगते हैं और दलबन्दीमें पड़कर लक्ष्यभ्रष्ट हो अपने ईश्वरका आप ही अपमान कर बैठते हैं। अपने साधन-पथको सर्वश्रेष्ठ समझना बुरा नहीं है। साधकके लिये तो यह आवश्यक भी है, परंतु दूसरेको हीन समझना बहुत बुरा है। आज दुनियामें जो इतने अधिक मत-मतान्तर और उनमें परस्पर विवाद, द्वेष, द्रोह वर्तमान हैं, इसका प्रधान कारण यही है; नहीं तो, जब ईश्वर एक है, वही एक सृष्टिका रचयिता है, सम्पूर्ण जगत् उसीसे उत्पन्न है, वही एक सबका पालन करता है, तब आपसमें लड़नेका क्या कारण? एक ही पिताकी संतान होकर एक-दूसरेको हीन बतलानेका क्या कारण? कारण यही कि अपने-अपने अज्ञानसे उस एककी जगह अनेक ईश्वरोंकी सृष्टिकर अपने ईश्वरको छोटा बना लिया है। ईश्वरकी व्यापकताको वे भूल गये हैं।

हिन्दुओंमें शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य, सौर, वेदान्ती, बौद्ध, जैन, सिख आदि अनेक मत हैं। इनमें भी भिन्न-भिन्न आचार्योंके अनुसार भिन्न-भिन्न अनेक सम्प्रदाय हैं। हिन्दुओंके अतिरिक्त, ईसाई, यहूदी, पारसी आदि अनेक मत हैं। प्रत्यक्ष या परोक्षभावसे प्रायः सभी ईश्वरको मानते हैं। देश, काल, प्रकृति, रुचि और अधिकार आदिके भेदसे मतोंसे, उनके बाहरी व्यवहारोंमें तथा उनकी उपासनापद्धतिमें भेद रहना आश्चर्यकी बात नहीं है। यहाँ हमें किसी मतसे विरोध नहीं है, सभी मत रहें, अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार चलते रहें; परंतु यह विवेक सबमें सर्वदा जाग्रत् रहना चाहिये कि हम सब भिन्न-भिन्न साधनोंसे उस एक ही परम साध्यकी ओर बढ़ रहे हैं, जिसको वैष्णव श्रीविष्णु, श्रीराम, श्रीकृष्ण कहते हैं; शैव शिव, शाक्त दुर्गा, गाणपत्य गणेश, सौर सूर्य, वेदान्ती ब्रह्म, मुसलमान अल्लाह और ईसाई गॉड कहते हैं। उस एक ही चरम लक्ष्य-स्थानतक पहुँचनेके





एक ही ईश्वरकी संतान होकर एक-दूसरेको नष्ट-भ्रष्ट करनेकी चेष्टा हमारे अज्ञानको ही प्रकट करती है। भारतवर्षके अध्यात्मवादमें एकत्वका परम तत्त्व निहित है। 'समस्त अनेकतामें एकताका अनुभव करना ही भारतीय धर्मका ध्येय है।' भारतवासियोंको स्वयं अपने ध्येयकी ओर अग्रसर होकर जगत्के सामने क्रियारूपमें यह आदर्श रखना चाहिये, जिससे जगत् उस परम शान्ति और सुखके पथपर आरूढ़ हो, उस नित्य तृप्तिकर सुधाका आस्वादनकर सुखी हो सके।

घरके लोगोंने यह व्यवस्था कर दी। ब्राह्मण शरबत या नारियलका पानी पी रहे थे और तर्कभूषणजी अनुभव कर रहे थे—‘मैं पी रहा हूँ।’ सचमुच उनकी रोगजन्य तृषा इस अनुभवसे शान्त हो गयी।



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

बना रह पाना असम्भव है। मनुष्यके साथ एक समस्या है। विश्रामके लिये जब वह पलंगपर जाता है, तो उस समय शरीर तो विश्राम चाहता है, पर मन उछल-कूद ही मचाते रहना चाहता है।

मन शरीरसे कहता है कि तुम थक गये होगे, पर मैं तो अभी चलना चाहता हूँ। नींद आ जानेपर भी मन सपनोंकी रचनाएँ करता रहता है। सपने मनकी ही क्रियाशीलताके कारण दिखायी देते हैं।

मनका यह स्वभाव भले ही हो, पर यह भी सत्य है कि जबतक मनमें विश्राम उत्पन्न न हो, तबतक जीवनमें धन्यता नहीं आयेगी। मनको विश्राम कैसे मिलेगा? गोस्वामीजी कहते हैं कि 'मानस' से विश्राम ही नहीं, परम विश्राम मिलता है। यह गोस्वामीजीका 'स्वयं' का अनुभव है। इस अनुभवको हम भी जीवनमें सार्थक कर सकते हैं। रात्रिमें सोनेसे पहले यदि हम आधा घण्टा मानसका पाठ करके सोयें तो हमारे शरीर एवं मनको परम विश्राम मिलेगा। इस अनुभवकी अनुभूति करें। जब बिस्तरपर सोने जायँ तो अपने तकियेपर अँगुलीसे 'राम' शब्द लिख लें और ऐसी कल्पना करें कि हम अपना सिर भगवान् रामकी गोदमें रखकर सो रहे हैं।

सुन्दरकाण्डमें यही सन्देश प्राप्त होता है। जब हनुमान्जी सीतामाताकी खोजमें जाते हैं तो इस यात्राके प्रारम्भमें ही उनके सामने सोनेका पहाड़ आ जाता है। सोना बड़ा मूल्यवान् होता है। व्यक्तिके मनमें सोनेके प्रति बड़ा आकर्षण होता है और वह उसे पाना चाहता है। समुद्रमें रहनेवाला स्वर्णपर्वत मैनाक हनुमान्जीसे कहता

हैं कि 'पहले आप थोड़ा विश्राम कीजिये तब आगे बढ़ियेगा।' पर हनुमान्जी उससे कहते हैं कि—

राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम॥

(रा०च०मा० ५।१)

बिना श्रीरामका कार्य किये कहीं विश्राम है क्या ? इसका मानो संकेत यही है कि दस-बीस किलो सोनेकी बात क्या ? सोनेका पहाड़ भी व्यक्तिको विश्राम नहीं दे सकता । केवल भगवान्‌के कार्यके द्वारा ही विश्राम और शान्ति सम्भव है ।

आगे चलकर वर्णन आता है कि भगवान् राम हनुमान्जीको बीचमें भी विश्राम दिला देते हैं।

सीताजीके पास पहुँचनेसे पूर्व हनुमान्जीका विभीषणजीसे वार्तालाप होता है। हनुमान्जी उन्हें भगवान् रामकी कथा सुनाते हैं, जिसे विभीषण आनन्दपूर्वक सुनते हैं। इस कथाके सुनने, कहनेका फल क्या होता है, यह बताते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा । पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा ॥

(रा०च०मा० ५।८।२)

हनुमान्जीको विश्राम मिल गया और उनकी सारी थकान मिट गयी। इसका अर्थ है कि भगवान् रामकी कथा विश्राम देनेवाली है। मानसका उद्देश्य यह बताना है कि हम जीवनमें जो भी कार्य करते हैं, परिश्रम करते हैं, वे सब करते रहें, पर जब विश्राम एवं शान्ति पाना चाहते हैं तो रामकथा में डूब जायँ। रामकथासे परम विश्राम एवं शान्तिकी अनुभूति होगी।

[ प्रेषक—श्रीअमृतलालजी गुप्ता ]

# रामकथाकी महिमा

रामकथा सुर धेनु सम सेवत सब सुख दानि ।

सत समाज सुर लोक सब को न सुनै अस जानि ॥

रामकथा सुंदर कर तारी । संसय बिहग उड़ावनिहारी ॥

रामकथा कलि बिटप कुठारी । सादर सुनु गिरिराजकुमारी ॥

[ भगवान् शंकर पार्वतीजीसे कहते हैं — ] श्रीरामचन्द्रजीकी कथा कामधेनुके समान सेवा करनेसे सब सुखोंको देनेवाली है और सत्पुरुषोंके समाज ही सब देवताओंके लोक हैं, ऐसा जानकर इसे कौन न सुनेगा! श्रीरामचन्द्रजीकी कथा हाथकी सुन्दर ताली है, जो सन्देहरूपी पक्षियोंको उड़ा देती है। फिर रामकथा कलियुगकी वृक्षको कटनेके लिये कुल्हाड़ी है। हे गिरिराजकुमारी! तम इसे आदरपूर्वक सुनो।

( ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज )

हैं और कभी उद्योग करनेपर भी नहीं मिलती। समस्त कामनाएँ पूरी हो ही जायँ—ऐसा कोई नियम नहीं है। कुछ कामनाएँ पूरी हो जाती हैं और कुछ कामनाएँ चेष्टा करनेपर भी पूरी नहीं होतीं—यह सबका अनुभव है। यदि पदार्थोंकी प्राप्तिमें कामना ही हेतु हो तो सबकी कामनाएँ पूरी होनी चाहिये, परंतु ऐसा होता नहीं। अतः कामनाकी पूर्तिमें कामना हेतु नहीं है। कामनाकी पूर्तिमें हेतु है—पुराने कर्मोंका फल, जो मिलनेवाला रहता है। कामना करें अथवा न करें, जो फल मिलनेवाला है, वह तो मिलेगा ही; जैसे—रोग होना, घाटा लग जाना, घरमें किसीकी मृत्यु हो जाना, निन्दा-अपमान हो जाना आदिके लिये कोई कामना नहीं करता; परंतु फिर भी वे होते हैं। विचार करना चाहिये कि हम जब रोगसे मुक्त होनेकी कामना करते हैं, तो क्या स्वस्थ हो जाते हैं? तात्पर्य यह है कि रोगकी कामना किये बिना भी रोग आता है और कोई कामना किये बिना भी नीरोगता रहती है। ऐसे ही घाटा लगनेकी कामना किये बिना भी घाटा लग जाता है और बिना कोई विशेष कामना किये भी मुनाफा हो जाता है। निन्दा-अपमानकी कामना न करनेपर भी निन्दा-अपमान होते हैं और बिना कामना किये भी प्रशंसा और सम्मान होते हैं। इसका कारण यही है कि ये सब पूर्वकृत कर्मोंके ही फल हैं, कामनाओंके नहीं। तात्पर्य यह हुआ कि जो होनेवाला है, वह तो होकर ही रहेगा और जो नहीं होनेवाला है, वह कभी नहीं होगा—चाहे उसकी कामना करें या न करें।

विहाय कामान्यः सर्वान्मुमांश्चरति निःस्पृहः । निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥ (गीता २।७१)

‘जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंका त्यागकर स्पृहारहित, ममतारहित और अहंकाररहित होकर विचरता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है।’

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः । अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ (कठोपनिषद् २।३।१४)

‘साधकके हृदयमें स्थित सम्पूर्ण कामनाएँ जब समूल नष्ट हो जाती हैं, तब वह मरणधर्मा मनुष्य अमर हो जाता है और उसे यहीं (इस मनुष्य-शरीरमें ही) ब्रह्मका भलीभाँति अनुभव हो जाता है।’





## हमारा दुःख कैसे दूर हो ?

( स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी महाराज )

हम चाहते हैं सुख और सुखके लिये ही दिन-रात चोटीका पसीना एड़ीतक बहाते रहते हैं। विश्राम करनेके लिये भी समय नहीं मिलता। पर क्या इससे हमें सुख मिल ही जाता है ? सुखी होनेके लिये यह परमावश्यक है कि जिस तरहका सुख हम चाहते हैं, उस तरहके सुखका स्वरूप हम जान लें। अन्यथा हम दुःखको ही सुख समझकर उसके पीछे पड़ जाते हैं। फलतः हमें सुखके बदले दुःख ही उठाना पड़ता है। यह निश्चित बात है कि दुःखके स्वरूपको जान लेनेसे हमें दुःखसे बचनेमें सहायता मिलती है और सुखके स्वरूपको जान लेनेसे सुखकी प्राप्तिमें।

दुःखको दूर करनेके लिये त्याग ही सर्वोत्तम उपाय है। 'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्' इच्छा सभी प्रकारके दुःखोंकी जननी है। इसका त्याग करना चाहिये। मोहके कारण ही सम्बन्धियोंके बिछुड़नेपर वियोगजनित दुःखका अनुभव होता है। अतः मोहको समूल नष्ट कर देना चाहिये। देहाभिमानके कारण ही अपमानजनित दुःख असह्य हो जाता है। अतः देहाभिमानका त्याग करना चाहिये। ममता तो दुःखका मूल है ही, अतः इसकी तो जड़ ही उखाड़ फेंकनी चाहिये। जो लोग संसारकी आशा लगाकर बैठे हैं, उनको तो दुःख भोगना ही पड़ेगा; क्योंकि संसारकी कोई भी शक्ति हमारी आशाको पूरी नहीं कर सकती। आशा उस परम करुणावरुणालय प्रभुकी ही करनी चाहिये।

सदाको सुखी हो जानेके लिये हम अपने शरीरसे संसारकी सेवा करते रहें। मनसे परम प्रभुको अपने मानकर उनके ही होकर रहें और बुद्धिसे अपने स्वरूपका निश्चय कर लें कि 'मैं कौन हूँ।' इस तरहसे हम संसारकी सेवा करके संसारके रागसे मुक्त हो जायँगे। सेवाका अर्थ है—संसारकी वस्तु संसारको दे देना। संसारकी वस्तु संसारको दे देनेसे हम संसारके ऋणसे मुक्त हो जायँगे। जबतक यह ऋण रहेगा तबतक 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्' बना ही रहेगा।

अपने स्वरूपका निश्चय न होनेके कारण ही हम शरीरके दुःखसे दुःखका और शरीरकी हानिसे अपनी हानिका अनुभव करते रहते हैं। एक मनुष्य फूट-फूटकर

रो रहा था। किसीने रोनेका कारण पूछा तो उसने कहा— 'मेरी बूढ़ी सास मर गयी है।' सास मर गयी तो तुमको क्या हुआ—तुम तो नहीं मर गये। किसीकी घड़ी खो गयी तो उसने अपने-आपको भी खो दिया। शरीर और संसारके दुःखको हम अपना दुःख और शरीर तथा संसारके नाशसे हम अपना नाश समझते हैं। अतः हमको अपने स्वरूपका ज्ञान होना आवश्यक है। हमें निश्चय करना है कि हम इन पाँच भूतोंका संघात नहीं, पर इन सबसे परे सच्चिदानन्द-स्वरूप परमात्माके अंश हैं। अतः यह जन्म-मरण हमारा नहीं है। यह तो हमने मान रखा है।

शरीरसे संसारकी सेवा कर देनेसे, मनसे अपनेको परमात्माका मान लेनेसे और बुद्धिसे अपने स्वरूपका निश्चय कर लेनेसे मनुष्य सदाके लिये शान्तिको पाकर कृतकृत्य हो जाता है। यही ज्ञान, कर्म और भक्तिका पवित्र संगम—त्रिवेणी है।

लोगोंका मत है कि सुख-दुःख प्रारब्ध अथवा कर्मफल है। पर यह बात जँचती नहीं। प्रारब्ध तो केवल परिस्थितिको लाकर सामने खड़ा कर देता है। उस परिस्थितिको अनुकूल या प्रतिकूल मानकर सुख या दुःख मान लेना तो अपनी मौज है। मान लीजिये कि किसीकी स्त्री मर गयी। तो स्त्रीका मरना तो परिस्थिति है, जिसको प्रारब्धने उपस्थित कर दिया है। पर स्त्रीके मरनेपर दुःखसे व्याकुल हो जाना, यह केवल अज्ञान है। अज्ञानी पुरुष ही किसी घटनामें दुःख या सुख मान लेता है। अतः विवेककी बड़ी आवश्यकता है। जिसको सुख-दुःखका विवेक है वह तो हानि-लाभ, जन्म-मरण, जय-पराजय और शत्रु-मित्र—इन द्वन्द्वोंमें सम रहता है। इस लेखके दीन लेखकने तो ऐसे व्यक्तियोंको देखा है, जिनको माँ-बाप और अन्य सम्बन्धियोंकी मृत्युपर भी जरा-सा शोक नहीं हुआ। एक सज्जनके पिता मर गये तो वे कीर्तन और श्रीगीताजीका पाठ करने लगे।

इससे सिद्ध है कि हमने सुख-दुःख केवल मान ही रखा है। वह तत्त्वतः कुछ नहीं है। इसलिये विवेकका आदर करके हमें इन द्वन्द्वोंसे मुक्त हो जाना चाहिये।

किसाकी मदद करने, कोई अच्छा काम करने  
अथवा निष्काम भावसे कोई समाजोपयोगी कार्य करनेसे  
समाजमें व्यक्ति की प्रतिष्ठा बढ़ता है और इसके लिये

‘आओ, बहन! जहाज खुलना ही चाहता है। हम शीघ्रतासे अपने स्थानपर चले चलें।’ ब्लैवट्स्कीके पीछे-पीछे स्त्री अपने दोनों बच्चे लेकर जहाजपर चढ़ गयी। ब्लैवट्स्कीने साधारण स्थानपर खड़ी होकर न्यूयार्ककी यात्रा पूरी की।



## साधन-सूत्र

[ काम-क्रोध-लोभपर विजय आवश्यक ]

( आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा )

❖ आप कल्पवृक्षके नीचे बैठे हैं। जैसी कामना करेंगे, वैसी ही प्राप्ति हो जायगी। आपका मन असत् विचारोंसे भरा है तो सत्की प्राप्ति कैसे हो पायेगी ?

❖ काम और क्रोध बड़े ही क्रूर हैं, इनमें दयाका नाम नहीं, इन्हें काल ही समझें। ये ज्ञान-निधिके साँप, विषय-कन्दराके बाघ और भजन-मार्गके भेड़िये हैं। ये बिना ही जलके डुबो देते हैं, बिना ही आगके जला देते हैं और बिना ही शस्त्रके मार डालते हैं।

❖ भर्तृहरि लिखते हैं ‘जो लोग वायु-भक्षण करके, जल पीकर और सूखे पत्ते खाकर रहते थे, वे विश्वामित्र, पराशर आदि भी सुन्दर स्त्रियोंके मुखको देखकर मोहको प्राप्त हो गये, फिर घी, दूध, दही आदि नाना प्रकारके व्यंजन खानेवाले यदि अपनी इन्द्रियोंका निग्रह कर सकें तो मानो विन्ध्याचल पर्वत समुद्रपर तैरने लगा, अर्थात् असम्भव बात है। साधनाके पथपर काम प्रबल शत्रु है।

❖ कामनारूपी प्रेत जब व्यक्तिके मनमें प्रवेश कर जाता है तो उससे सहज ही मुक्त नहीं हुआ जा सकता। वह नाना प्रकारकी यन्त्रणाएँ देता है तथा व्यक्तिके बल-बुद्धिका हरण कर लेता है। अन्ततः तीव्र वैराग्यके अस्त्रद्वारा ही उससे पीछा छुड़ाया जा सकता है।

❖ जीवमें जब वासनाका उदय होता है तो बुद्धि मनमें, मन इन्द्रियोंमें और इन्द्रियाँ विषयोंमें विलीन होती हैं तथा जीवको सुख-भोगकी ओर ले जाती हैं, जिसका परिणाम पराधीनता या बन्धन होता है। इसके विपरीत जब वासनाकी निवृत्ति हो जाती है तो सुखभोग योगमें बदल जाता है, जिसका परिणाम स्वाधीनता या मुक्ति होता है।

❖ कुछ चाहनेसे ही अशान्ति आती है। कुछ भी चाहना न हो तो अशान्ति आ ही नहीं सकती। आवश्यकता तो परमात्मा सबकी पूरी करते ही हैं। चाहना आजतक किसीकी पूरी नहीं हुई। संसारकी चाहना मिटनेसे ही परमात्मासे योग होता है।

❖ ब्रह्मलीन स्वामी अखण्डानन्दजी सरस्वतीके अनुसार ‘सौ सालके एक महात्माने कहा कि—‘अगर ऋषिकेशसे लाहौरतककी धरती सोनेकी हो, तो मेरे मनमें लोभ नहीं आयेगा। लेकिन मैं मर रहा हूँ, तो भी ‘काम’के बारेमें

जबतक यह शरीर श्मशानमें न चला जाय, तबतक कोई आश्वासन नहीं दे सकता।'

❖ वृद्धावस्थामें क्रोध और काम तो शान्त हो जाते हैं; पर लोभ बढ़ता जाता है। लोभ पापका जनक है। पाप बढ़ेंगे तो जीव दुखी होगा। लोभको सन्तोषके द्वारा जीता जा सकता है।

❖ अवचेतन मस्तिष्कमें बीजरूपमें पड़ी हुई वासनाएँ अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर अंकुरित हो जाती हैं, फूलने-फलने लगती हैं तथा प्रबल होकर जीवको अधीन कर लेती हैं। अतः हृदयमें सदैव शभ भावोंकी सरिता बहने दें।

❖ काम और क्रोध—शत्रु तो एक ही है, किंतु आता दो रूपोंमें है। कभी तो वह मीठा जहर बनकर आता है और कभी कड़ुआ जहर बनकर आता है। दोनोंसे जीवका पतन होता है। इस शत्रुका नाश विवेकसे ही संभव है।

❖ लोभरूपी शत्रु जिसके हृदयमें डेरा डाल देता है, उस व्यक्तिसे सच्चाई और शील आदि सद्गुण विदा हो जाते हैं और वह व्यक्ति झूठ एवं छल-कपटका आश्रय लेकर ही प्रत्येक कार्य करता है।

❖ जैसे वनका सबसे शक्तिशाली पशु हाथी स्पर्श-सुखके कारण गड्ढेमें गिरकर बँधनेके लिये विवश हो जाता है, ऐसे ही जीवात्मा अपने सच्चिदानन्दस्वरूपको भूलकर कामके पाशमें बँधकर अवनतिको प्राप्त होता है।

❖ कामका नाश नहीं होता; क्योंकि यह सृष्टिका मूल कारण है। राखके नीचे दबी आगकी तरह यह अनुकूल परिस्थिति पाकर जग जाता है। अपनेको राममें लगा दो तो इसका परिष्कार हो सकता है। तत्त्वकी प्राप्ति होनेपर ही इसका नाश सम्भव है।

❖ काम, क्रोध और लोभ आदि विकारोंका वेग बड़ा प्रबल होता है। इनके बहावमें विवेकका नाश हो जाता है। भगवान्की शरणमें रहनेसे तथा दृढ़ निश्चयात्मिका बुद्धिसे ही इनपर विजय पायी जा सकती है।

❖ कामनाओंका कभी अंत नहीं आता है, व्यक्तिका जीवन ही समाप्त हो जाता है, किंतु जिसका मन प्रभु-भक्तिमें लग जाता है, उसकी समस्त कामनाएँ ईश्वर पूरी कर देते हैं।

पवनसुतके लंका-प्रवासकी दूसरी उपलब्धि है समुद्रमें रहनेवाली राक्षसीका वध। यह निशिचरी समुद्रमें रहती थी। इसकी विशेषता यह थी कि यह आकाशमें उड़नेवाले जीवोंको खाया करती थी। आकाशके जीवोंकी समुद्रमें पड़नेवाली परछाईको जैसे ही यह पकड़ती थी, वे उड़ नहीं पाते थे और समुद्रमें गिर पड़ते थे, तब यह उन्हें खा लेती थी। उसने वही छल हनुमान्जीसे किया। हनुमान्जी तुरंत उसका कपट पहचान गये। फलतः हनुमान्जीने

मित्रता करना। किसी अनजाने देशमें अपने शत्रु राजाकी

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई। करि माया नभु के खग गहई ॥  
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं। जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं ॥  
गहइ छाँह सक सो न उड़ाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई ॥  
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा ॥  
ताहि मारि मारुतसत बीरा। बारिधि पार गयउ मतिधीरा ॥

(रा०च०मा० ५।३।१-५)

पवनसुतकी तीसरी उपलब्धि लंकाके प्रवेशद्वारपर रहनेवाली राक्षसी लंकिनीको सबक सिखाना है। जब हनुमान्जी मशकका रूप बनाकर लंकामें प्रवेश करने लगे तो लंकिनीने उन्हें देख लिया और कहा कि मेरे निरादर करके अन्दर कहाँ जा रहा है। रे दुष्ट, तुझे क्या मेरा भेद ज्ञात नहीं कि जहाँतक जितने भी चोर हैं, वे सब मेरे आहार हैं। हनुमान्जीने जैसे ही लंकिनीको अपने लिये 'दुष्ट' और 'चोर' शब्द कहते सुना, वे समझ गये कि यह शत्रुपक्षकी राक्षसी है। अतः उन्होंने उसे तुरंत एक जोरदार घूँसा लगाया, जिससे वह व्याकुल होकर खूनकी उलटी करती हुई धरतीपर लुढ़क गयी। किंतु वह पुनः सँभलकर खड़ी हुई और हाथ जोड़कर विनती करती हुई बोली कि रावणको जब ब्रह्माजीने वर दिया, तब उन्होंने मुझे यह पहचान बतायी थी कि जब तू किसी कपिके मारनेसे व्याकुल हो तो समझ लेना कि निशिचरोंके संहारका समय आ गया है। फिर उसने इसे अपने लिये बड़े पुण्यकी बात मानी कि उसे भगवान् रामके दूतके दर्शनका सौभाग्य मिला। अन्तमें लंकिनीने हनुमान्जीसे लंकानगरीमें प्रवेशकर भगवान् रामके सब कार्य करनेका निवेदन किया—

नाम लंकिनी एक निसिचरी । सो कह चलेसि मोहि निंदरी ॥  
जानेहि नहीं मरमु सठ मोरा । मोर अहार जहाँ लगि चोरा ।  
मुठिका एक महा कपि हनी । रुधिर बमत धरनीं ढनमनी ।  
पुनि संभारि उठी सो लंका । जोरि पानि कर बिनय ससंका ।  
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा । चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा ॥  
बिकल होसि तैं कपि के मारे । तब जानेसु निसिचर संघारे ॥  
तात मोर अति पुन्य बहुता । देखेउँ नयन राम कर दूता ॥

(रा०च०मा० ५।४।२-८)

मित्रता करना। किसी अनजाने देशमें अपने शत्रु राजाको राजधानीमें किसी सज्जन व्यक्तिको खोजना और फिर उसे अपना मित्र बना लेना निश्चय ही एक बड़ी उपलब्धि है। हनुमान्जीने लंकामें विभीषणकी एक सज्जनके रूपमें पहचान अपने बुद्धिचातुर्यसे—उनके निवासमें अंकित ‘**रामायुध**’ और वहाँ विकसित ‘**नव तुलसिकावृन्द**’ को देखकर की। तभी मनमें एक शंका उठी कि लंका तो निश्चिरोकी नगरी है, यहाँ सज्जन कहाँ निवास करने आयेगा—**लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा ॥** (रा०च०मा० ५।६।१) लेकिन इस शंकाका निवारण उसी समय हो गया, जब विभीषणने जागते ही रामका नाम लिया। हनुमान्जीने पुनः अपने बुद्धि-चातुर्यका परिचय देते हुए विभीषणसे हठपूर्वक पहचान करनेका निर्णय लिया और इस हेतु तुरंत ब्राह्मणका वेश बनाया और कुछ वैष्णवोचित वचन कहकर विभीषणको अपनी ओर आकर्षित किया। दोनोंने एक-दूसरेको अपना परिचय दिया और रामका गुणगान किया। विभीषणसे ही हनुमान्जीको सीता माताका पता और वहाँ पहुँचनेकी युक्ति भी ज्ञात हुई—**पुनि सब कथा बिभीषन कही। जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही ॥ तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता। देखी चहउँ जानकी माता ॥ जगति बिभीषन सकल सनाई। चलेउ पवनसत बिदा कराई ॥**

(रा०च०मा० ५।८।३-५)

पवनसुतकी पाँचवीं उपलब्धि सीतामाताका पता लगाना है। सीतामाता अशोकवाटिकामें जिस अशोकके पेड़के नीचे सशोक बैठी थीं, हनुमान्जी उसी पेड़के ऊपर पत्तोंके बीच इस प्रकार छिपकर बैठे थे कि वे सबको देख सकते थे, पर उन्हें कोई नहीं देख सकता था। वहींसे उन्होंने रावण और माता सीताका पूरा संवाद सुना, जिससे उन्हें पता लगा कि रावण साम, दान, दण्ड, भेद आदि सभी नीतियाँ अपनाकर सीताको अपनी पटरानी बनाना चाहता है। रावणके निराश होकर जानेके बाद हनुमान्जीने बड़ी चतुरतासे श्रीरामकी अँगूठी सीताजीतक पहुँचायी और स्वयंका रामदूतके रूपमें परिचय दिया—

इसपर नाराज होकर रावणने बलशाली मेघनादको भेजा। साथ ही यह निर्देश भी दिया कि वानरको मारना नहीं केवल बाँधकर लाना, ताकि पता चले कि कपि कहाँसे आया है। बन्धुके निधनका समाचार सुन नाराज अतुलनीय बलशाली मेघनाद चल पड़ा। हनुमान्जीने उसे देखकर समझ लिया कि यह दारुण भट है, जो अपने साथ महाभटोंको लेकर आया है। तब हनुमान्जीने एक बहुत बड़ा पेड़ उखाड़ा और उसके प्रहारसे मेघनादको रथहीन कर दिया। जबतक मेघनाद सँभले, हनुमान्जीने उसके महाभटोंको अपने शरीरसे रगड़कर मसल डाला। फिर मेघनादको एक घँसा मारकर पेड़पर चढ़ गये। सब प्रकारसे

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

हताश होकर मेघनादने हनुमान्जीको ब्रह्मास्त्रसे बेसुधकर नीचे गिराया और नागपाशसे बाँधकर ले गया। इस प्रकार हनुमान्जीने पता लगा लिया कि रावणकी सेनामें चार प्रकारके योद्धा—भट, सुभट, महाभट और दारुण भट हैं—सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना ॥ मारसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिअ कपिहि कहाँ कर आही ॥ चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा ॥ कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा ॥ अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा ॥ रहे महाभट ताके संग। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा ॥ तिन्हहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहुँ गजराजा ॥ मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एक छन मुरुछा आई ॥ उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया ॥ ब्रह्मबान कपि कहूँ तेहिं मारा। परतिहुँ बार कटकु संधारा ॥ तेहिं देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ ॥

(रा०च०मा० ५।१९।१—९, २०।१—२)

हनुमान्जीकी आठवीं उपलब्धि रावणको वाग्युद्धमें परास्त करना है। इसका प्रमाण यही है कि जब कोई वाग्युद्धमें हार जाता है तो वह क्रोधसे तिलमिला उठता है। यही रावणके साथ भी हुआ। जब रावणने हनुमान्जीसे कहा कि तेरी मृत्यु निकट आ गयी है, तभी तू गुरुके समान मुझे सिखा रहा है। तब हनुमान्जीने कहा कि उलटा होनेवाला है, क्योंकि तुम्हारा मतिभ्रम स्पष्ट हो गया है—

बोला बिहँसि महा अभिमानी । मिला हमहि कपि गुर बड़ ग्यानी ॥  
मृत्यु निकट आई खल तोही । लागेसि अधम सिखावन मोही ॥  
उलटा होइहि कह हनुमाना । मतिभ्रम तोर प्रगट मैं जाना ॥  
सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना । बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना ॥  
(रा०च०मा० ५।२४।२-५)

हनुमान्जीकी नौवीं उपलब्धि लंकादहन करना है। जब हनुमान्जीकी पूँछमें आग लगा दी जाती है, तब वे बहुत छोटा रूप धारण कर लेते हैं। इससे उनके सब बन्धन ढीले हो जाते हैं। तब वे बन्धनसे छूटकर सोनेकी अटारीपर चढ़ जाते हैं, जिससे सभी राक्षसियाँ भयभीत हो उठती हैं। इस प्रकार

हनुमान्जी विभीषणका घर छोड़कर सारी लंकाको जला डालते हैं—

पावक जरत देखि हनुमंता । भयउ परम लघुरूप तुरंता ॥  
निबुकि चढेउ कपि कनक अटारीं । भई सभ्नीत निसाचर नारीं ॥  
जारा नगरु निमिष एक माहीं । एक बिभीषन कर गृह नाहीं ॥  
(रा०च०मा० ५।२५।८-९, २६।६)

हनुमान्जीकी दसवीं उपलब्धि सीताका पता लगाकर उनकी निशानी चूडामणि भगवान् रामतक पहुँचाना है तथा सीताकी दशाकी जानकारी देना है।  
चलत मोहि चूड़ामनि दीन्ही। रघुपति हृदयँ लाइ सोइ लीन्ही।  
सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहिं कहें भलि दीनदयाला॥  
(रा०च०मा० ५।३१।१.९)

हनुमान्जीकी ग्यारहवीं उपलब्धि भगवान् रामसे भक्तिका वरदान प्राप्त करना है। हनुमान्जी भगवान् रामसे भक्तिका दुर्लभ वरदान माँगते हैं और भगवान् उसे तुरंत प्रदान करते हैं—

नाथ भगति अति सुखदायनी । देहु कृपा करि अनपायनी ॥  
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी । एवमस्तु तब कहहु भवानी ॥  
(रा०च०मा० पृ० ३४।१-२)

इस प्रकार पवनसुतके लंका-प्रवासकी एकादश उपलब्धियाँ उनके बुद्धिचातुर्य, साहस, बल, सिद्धियों और भक्ति भावनाका परिचय देती हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि इतना सब करनेके बाद भी हनुमान्जीमें अभिमानका अंकुर नहीं फूटा। इसका प्रमाण यही है कि जब भगवान् रामने हनुमान्जीसे पूछा—

कहु कपि रावन पालित लंका । केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका ॥  
(रा०च०मा० ५।३३।५)

तब हनुमान्जीने अपनी अभिमानहीनताका परिचय देते हुए कहा—

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥  
नाधि सिंधु हाटकपुर जारा। निस्चर गन बधि बिपिन उजारा॥  
सो सब तव प्रताप रघुआई। नाथ न कछु मोरि प्रभुताई॥

(रा०च०मा० ५।३४।७—९)  
 इस प्रकार यह प्रमाणित हो जाता है कि हनुमान्जी सर्वगणसम्पन्न भक्तशिरोमणि हैं।

आपने अपनेको जिस कल्पनामें बाँध लिया है,

जिस प्रकार फलोंकी फसल खरीदनेके लिये केवल फलोंका दाम देते हैं और छाया बिना मूल्य ही मिलती है, उसी प्रकार ज्ञान होनेपर योग स्वतः हो जाता है। यद्यपि ज्ञाननिष्ठ पुरुषको योगकी कोई आवश्यकता नहीं रहती तथापि असंगताके कारण योग अपने आप होता है। अतः जिसे योग और भोग शान्ति नहीं दे पाते, वही सत्यका अधिकारी है।

हिंदू धर्मो Discom Server <https://dsc.gg/dharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh



अभी-अभी उस दिन श्री म.....को तार मिला—

हमारे देशकी योग-साधना पश्चिमी मुल्कोंकी भोगवादी संस्कृतिसे ऊबे हुए लोगोंको अपनी ओर सहज ही आकर्षित करती है। मनकी शान्ति प्राप्त करनेके लिये भारत आयी पोलैण्डकी एक युवतीसे भी मेरी मुलाकात हुई। काफी धनाढ्य रही होगी। उसके साथमें दो गैसके सिलेण्डर, आलू, चावल और अन्य भोजन-सामग्री थी। नवम्बरके महीनेमें आयी थी, तामझामके साथ गंगोत्रीके निकट भोजवासाकी गुफामें गयी। मैंने अपने साथी

कर्मचारीके जरिये उसे गंगोत्रीतक पहुँचानेमें मदद की।  
मार्चके अन्तमें वह लौटी और पुनः अपने देश चली गयी।

वैराग्य और साधनाके संगमस्थल उत्तरकाशीमें भिन्न-भिन्न प्रवृत्तिके व्यक्तियोंसे मिलना मेरे मनमें सवाल उठाता था। तेलगुभाषी संन्यासीने कहा था कि 'दूध पीया'। उसने दूध पीया अथवा गंगाजलका पान किया, यह एक प्रश्न-जैसा था। हंस नीर-क्षीर-विवेक रखता है, मगर जो मनुष्योंमें परमहंस होता है, उसके लिये नीर-क्षीरमें कोई अन्तर नहीं होता है। पवित्र गंगाजलको वह 'क्षीर' समझकर ही ग्रहण करता है। इस बातको स्वयंके विवेकसे समझा जा सकता है। दूसरा व्यक्ति मोहन था, सुखोंका भोग करनेकी उग्रमें उसने सारे सुख त्याग दिये थे। सुखोंका छिन जाना और सुखोंको त्यागना अलग-अलग बात होती है। दोनोंमें बहुत अन्तर होता है। सुखोंका त्याग करनेवाला निश्चय ही महान् आत्मा होता है। फिर वह धनाढ्य विदेशी महिला थी, जो मनकी शान्तिकी खोजमें संन्यास चाहती थी, मगर भौतिक सुख-सुविधाओंका त्याग करना उसके वशमें नहीं था। मानव मन कितना विचित्र होता है, सुखोंका त्याग करना है तब भी अवचेतनमें उनके मोहसे उबर नहीं पाता है। जो उबर पाता है, उसे संन्यासकी जरूरत ही कहाँ रहती है?

एक और प्रसंग बताकर इस अध्यायको शेष करना चाहूँगा। रात्रिके दस बजे होंगे, सोनेके लिये बिस्तरपर लेटा ही था। तभी खूब जोरोंसे तख्ता हिलने लगा। ऐसा अनुभव पहली बार मेरे जीवनमें हुआ। मैं अपने सचिवको, जिनकी कोठरी मेरी बगलमें ही है, पुकारने लगा, किन्तु आवाज नहीं निकली। मैं पुनः लेट गया और फिर झटका लगा। नौद गहरी थी, अतः सो गया। प्रातः उठकर देखा तो भयावह दृश्य! माँ गंगाका भीषणरूप देखनेको मिला, जैसे महिषासुरका वध करते दुर्गके रूपमें अवतरित हुई हों। चारों तरफ हाहाकार!

माँ गंगाको उनकी दानव संतानने कितना कष्ट दिया है। माँ सब कष्ट झेलती रहीं कि कभी तो मेरा बालक सुधरेगा। गंगामाताके पवित्र जलको लोहेके बड़े-बड़े टरबाइनमें ले जाकर नीचे गिराना और इस प्रक्रियाको बार-बार करना, माँको कितनी चोट आती है। मनमें विचार आता है, गायकी हत्यामें एक छुरी लगायी खत्म। किन्तु गंगामैयाको तो प्रतिक्षण तेज चाकुओंके बीचसे

गुजरना पड़ता है। माँ हजारों वर्षोंसे गोमुखसे गंगासागरतक देशकी भूमिको धन-धान्यसे पुष्पित-फलित करती हुई भक्तोंका ताप-पाप निवारण करती हैं। ठाकुर रामकृष्ण स्वयं माथुरबाबूके साथ नौकापर यात्रा करते हुए काशीके मणिकर्णिकाघाटका दृश्य देखकर विभोर हो गये और उन्हें सँभालना पड़ा। उन्हीं गंगामैयाकी हम दानवके रूपमें किस प्रकार हत्या कर रहे हैं। कालका विनाशकारी ताण्डव—माताका उग्ररूप हम लोगोंके लिये चेतावनी है कि अभी भी सँभल जाओ। प्रकृतिका उतना ही दोहन करो, जितना आवश्यक है। जगह-जगह सीमेन्टकी बैरीकेटिंगके द्वारा गंगामैयाको बाँधकर खड़े हैं और बेचारी माँ अपने पुत्रोंके लक्षणोंको देखकर बिलखती है।

गत वर्ष बदरीनाथ गया था, एकदम सब कुछ बदल ही गया है। हरियालीकी जगह सीमेन्ट-कंक्रीटकी बड़ी-बड़ी बहुमंजिली इमारतें और बड़े-बड़े होटल खड़े किये जा रहे हैं। तीर्थस्थान, जहाँ ऋषि-मुनि पूजा करते थे—इनको भी हम लोगोंने अपने कुकृत्यसे अपवित्र कर दिया। कुछ वर्षोंपूर्व बंगाल कैडरके एक आई. ए. एस. अधिकारी की पुत्री और उनकी सहेलियाँ गोमुख गयी थीं और वहाँसे वे एक ट्रक टिनके डिब्बे तथा बोतलें इकट्ठा करके गंगोत्री लायीं।

सोचिये, गोमुख—जो माँ भागीरथीका उद्गम-स्थल है, वहाँ ट्रकभर कूड़ा! यह है भोगवादी संस्कृतिका एक बीभत्स रूप! कहाँ गंगाको माँ मानकर उनकी सेवा करनेकी इच्छा, कहाँ गंगाजलको दूध मानना, कहाँ उनके तटवर्ती किसी वृक्षके नीचे लेटनेमें उनकी गोदका अनुभव, कहाँ प्रथम श्रेणीके उच्च सरकारीपदका त्यागकर गंगातटस्थित गुफामें साधना और गंगोत्रीकी यात्रा करना, कहाँ पोलैण्डसे शान्ति की खोजमें एक विदेशी युवतीका गंगातटपर आना और कहाँ तथाकथित भारतीयोंका ही गंगामाँके उद्गममें जाकर ट्रकों कूड़ा फेंककर आना, जिसमें कि शराबकी बोतलें भी हों! ये हैं संस्कृतिके दो रूप—एक भक्ति-भावनासे भरा हुआ गंगाको माँ माननेवाला और दूसरा माँ गंगाको मात्र बहता हुआ पानी मानकर उनका उपभोग अपनी मौज-मस्तीमें करनेवाला। मेरी समझसे प्राचीन तीर्थयात्राओं और आधुनिक पर्यटन-यात्राओंका यही मौलिक अन्तर है। एक भक्ति-भावना-प्रधान है तो दूसरी भोग-भावना!

# मेरे माँझी!

( श्रीइन्दरचन्दजी तिवारी )

मैं जप-तप-ज्ञान-ध्यान—कुछ भी नहीं जानता। मेरा मन भी किसी प्रकारके कर्मकाण्ड या इस प्रकारकी किसी साधनामें विशेष नहीं रमता।

मैं खोया रहता हूँ दुष्कर्मोंमें, डूबा रहता हूँ कामिनी-कंचनकी चिन्तामें। दिन-रात दुर्विचारोंमें खोया रहता हूँ, परछिद्रान्वेषणमें गोते लगाता रहता हूँ। दिन-रात काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेषके अन्तस्तलमें डूबा रहता हूँ। इन हाथोंसे केवल पापकर्म ही होते हैं।

नेत्रोंसे निहारा करता हूँ केवल वही सब कुछ, जो नहीं देखना चाहिये।

करता रहता हूँ दिन-रात वही सब, जो नहीं करना चाहिये।

खोया रहता हूँ कुविचारोंमें, करता रहता हूँ कुसंग,  
पान करता रहता हूँ भक्ष्य-अभक्ष्य ।

मेरे लिये संसारमें कोई आशा शेष नहीं रह गयी है, ज्योतिके सब द्वार मेरे लिये बन्द हो गये हैं। ज्ञानके सारे मार्ग अवरुद्ध हो गये हैं। अज्ञानका घनघोर तिमिर व्याप्त है। समग्र दिशाओंमें नहीं सुझाता है पसारा हाथ।

गरज रहे हैं अहंकारके घनघोर बादल। चमक रही है कामिनी-कंचनके लोभकी बिजली। नाच रहे हैं पुत्र, पुत्री, परिवारजनोंकी प्राप्तिके मयूर, कूक रही है कोयल-सी कोमल लोकैषणा, मोहपाशमें बद्ध करनेवाली अविद्या नारि, पिउ कहाँकी तान लगाकर कूक रहा है पपिहरा। प्रभुकी यादमें विरही न बनाकर सांसारिक वैभव, यश, कामिनी-कंचनकी प्राप्तिके लिये विरही बना रहा है। टर्ल रहे हैं दम्भके वाचाल दादुर। इधर-उधर भाग रहे हैं भोगोंके सर्प।

अचानक प्राचीसे सूर्योदय हुआ, समग्र तम क्षणार्धमें मिट गया है। पथ स्फटिक-सा स्पष्ट हो गया है। आकाशमार्गपर फैल गयी स्नेहकी, प्रेमकी लालिमा, चहकने लगे वेदपाठी शिष्योंकी भाँति मादक स्वरोमें पक्षीगण। बहने लगी प्रातः समीर। प्रेममय हो गयी समस्त दिशाएँ। गुरु माँझी दृष्टिगोचर होने लगे विशाल नाव एवं पतवार हाथमें लिये हुए भवसागरके किनारे।

पास पहुँचते ही करने लगे प्रेमरस डूबा अनुपम प्रेमालिंगन। करने लगे प्रेमकी वर्षा, लगा लिया कण्ठसे, ऐसा लगा मानो युगोंसे प्रतीक्षामें खड़े हैं हमारे माँझी कि अब आयेगा मेरा भटका हुआ यात्री मेरी नावपर चढ़कर चलेगा पार। हाथ पकड़कर बिठाल लिया निज गोदमें माँझीने एक हाथमें पतवार तथा दूसरे हाथमें अपने दुलारेको, चल पड़ी नौका, समाप्त हो गया द्वन्द्व, नष्ट हो गयी अनिश्चितताकी रात्रि।

राहमें लहरोंने उछाल मारी, तूफान भी आया—  
ऐसा लगा नौका अब पलटी तब पलटी! मगरमच्छ एवं  
विशाल भयावह मछलियोंने भी आक्रमण किये। पर सब  
कुछ निष्फल! फलित हुआ केवल माँझी, पार पहुँचनेका  
कार्यक्रम।

वाह रे मेरे माँझी, कौन था समर्थ तेरे सिवा मुझे  
पहुँचानेमें उस पार ? कौन था समर्थ जो उत्ताल तरंगों  
भयावह तूफानोंके बीच इतनी कुशलताके साथ पार करा  
देता यह भवसागर ?

वन्दन है तेरा माँझी ! अभिनन्दन है तेरा माँझी !  
पूजन-भजन-अर्चन है तेरा माँझी !

लगाता हूँ तेरी पगधूरि माथेसे, अब तो नाचूँगा तेरे  
साथ, गाऊँगा तेरे साथ, बहकूँगा तेरे साथ, चहकूँगा तेरे  
साथ। अब न छोड़ देना मुझे तपती रेतपर कहीं पुनः मुझे

उबारे कौन, बचाये कौन इस भूमित जीवको? ऐ मेरे माँझी!

# भारतीय संस्कृतिमें पशु-पक्षियोंका महत्त्व

[ पशु-पक्षियोंकी हत्या महान् अपराध और पाप ]

( श्रीइन्द्रलालजी शास्त्री विद्यालंकार )

भारतवर्षकी जो सम्पत्तियाँ और निधियाँ हैं, उनमें पशु-पक्षियोंका स्थान भी पर्याप्त ऊँचा है। इस सम्पत्तिकी दृष्टिसे भारत अन्य देशोंसे बहुत अधिक समृद्ध है। कहा जाता है कि सारे विश्वमें जितने पशु हैं, उनका चतुर्थांश केवल भारतमें है। भारतमें पाँच सौ प्रकारके स्तनीय वर्गके पशु पाये जाते हैं। भारत अपनी इस सम्पत्ति या धरोहरकी रक्षा 'अहिंसा परमो धर्मः' इस सिद्धान्तके आधारपर ही करता रहा है।

वैदिक सनातन धर्ममें पशुओंकी पूजा भी होती आयी है। जैसे दशहरे (विजयादशमी) पर घोड़ेका पूजन, गोवर्धन-पर्वपर गाय-बैलका पूजन और नागपंचमी पर्वपर साँपोंकी पूजा की जाती है। प्रातःकाल नकुल (नेवले) के दर्शनको महान् मंगलकारी और विजयादशमीके दिन नीलकण्ठके दर्शन कर लेना शुभ शकुन माना जाता है। शिवरात्रिपर नन्दी (बैल) की पूजा की जाती है।

प्रातःकाल हाथीके दर्शन करना महान् मंगलकारी माना जाता है। 'यशस्तिलकचम्पू' नामक जैन महाकाव्यमें हाथीको परमेष्ठी-पुत्र बतलाया गया है और जो प्रातःकाल उठते ही हाथीको देखता है और उसकी पूजा (सत्कार) करता है, उसके सारे विघ्न नष्ट हो जाते हैं—ऐसा बतलाया गया है।

अथ प्रभाते परमेष्ठिनन्दनान्समर्च्य पश्यन् करिणो नरेन्द्रः ।  
दुःस्वप्नदुष्टग्रहनष्ट्रेष्टाः प्रयान्ति नाशं सहसा नृपस्य ॥

(यशस्तिलकचम्पू, पूर्वखण्ड)

अपने-अपने गृहद्वारोंपर हाथी-घोड़ोंके चित्र लिखवाना इसी मंगलदायक सूचनाका स्रोत है।

सनातन वैदिक धर्ममें अनेक देवी-देवताओंके वाहन पशु-पक्षी ही बतलाये गये हैं। जैसे शीतलाका वाहन गर्दभ, गणेशजीका वाहन मूषक, ब्रह्माजीका हंस, विष्णुका गरुड़, महादेवका बैल, कार्तिकेयका मयूर, इन्द्रका ऐरावत हाथी, लक्ष्मीका उलूक, महाकालीका सिंह। इस तथ्यसे भी पशु-पक्षियोंका महत्त्व भारतीय

संस्कृतिमें पर्याप्त है।

जैन-धर्ममें चौबीस तीर्थकर माने जाते हैं। इन चौबीसमें आधेसे अधिक तीर्थकरोंकी पहचानके लिये चिह्न पशु-पक्षियोंके ही हैं। कहा जाता है कि जब तीर्थकर भगवान् जन्म लेते हैं तब सौधर्म स्वर्गके इन्द्र स्वर्गसे उतर भगवान्के दर्शनके लिये आते हैं और सबसे पहले अंगुष्ठ देखते हैं। उस अंगुष्ठमें जो चिह्न उन्हें दीखता है, वही चिह्न उन भगवान्का माना जाता है। जैसे ऋषभदेव भगवान्के बैलका, अजितनाथ तीर्थकर भगवान्के हाथीका, सम्भवनाथ भगवान्के घोड़ेका, अभिनन्दननाथ स्वामीके बन्दरका, कुंथुनाथ स्वामीके बकरेका, भगवान् महावीर स्वामीके सिंहका चिह्न है। और भी अनेक तीर्थकर भगवान्के विविध पशु-पक्षियोंके चिह्न हैं। तीर्थकर भगवान्का अभिषेक-पूजन करते समय इनका भी पूजन अभिषेकादि हो जाना स्वाभाविक है।

भगवान्को इन्द्र प्रसूतिस्नान करानेके लिये जब पांडुकशिलापर ले जाते हैं तब ऐरावत हाथीपर ही बिठाकर ले जाते हैं। धरणेन्द्र (सर्प) ने भगवान् पार्श्वनाथपर आये हुए उपसर्गको भक्तिवश दूर किया था। भगवान् पार्श्वनाथके चिह्न भी सर्पका ही है। इस दृष्टिसे भी पशु-पक्षियोंका महत्त्व बहुत बढ़ जाता है। शान्तिनाथ स्वामीके हरिणका चिह्न है। हरिषेणबृहत्कथा-कोशमें लिखा है—

यतिराजवाजिकुञ्जरगोमयवरकुम्भवृषवरा ह्येते ।  
आगमने निष्क्रमणे सिद्धिकराः सर्वकार्येषु ॥

गमन और प्रवेशके समय यदि सामने मुनि, राजा, घोड़ा, हाथी, गोबर, कलश और बैल दीख पड़े अर्थात् ये सामने आ जायँ तो जिस कार्यके लिये गमनागमन किया जाय, वह सिद्ध हो जाता है।

इसी ग्रन्थमें और भी लिखा है—

श्रमणस्तुरगो राजा मयूरः कुञ्जरो वृषः ।

प्रस्थाने वा प्रवेशे वा सर्वे सिद्धिकराः स्मृताः ॥





आदि पक्षी हमारा अन्न खा जाते हैं, अतः इन्हें मार डालना देशहित है। जो कबूतर शान्ति और संवादका दूततक प्रसिद्ध है, क्षयरोगका नाशक है और भी उसके अनेक उपकार हैं, वह दो-चार अनाजके दानोंसे अपना पेट भर ले, उसका यह बदला कि उसे जानसे मार दिया जाय। कितनी कृतघ्नताकी पराकाष्ठा है!

भारतीय संस्कृतिमें प्राणिमात्रके संरक्षणकी यत्र-तत्र आज भी प्रणाली प्रचलित है। जैसे चींटियोंको आटा, मछलियोंको आटेकी गोलियाँ, गायोंको घास एवं घास, चीलोंको पकौड़ी-बड़े, कुत्तोंको रोटी और तो क्या साँपोंतकको दूध पिलाया जाता है। श्राद्धोंके दिनोंमें तो कौओंको भी खूब खिलाया जाता है।

राजा दिलीपके द्वारा नन्दिनी गायकी रक्षाके लिये सिंहके सामने अपना शरीर भी अर्पण करना प्रसिद्ध है। बाज (इन्द्र) जब कबूतर (अग्नि)-को खाने आया तो राजा शिबिने कबूतरके प्राण बचाकर बाजको उसकी क्षुधापूर्तिके लिये अपना शरीरांग काटकर देना उचित समझा।

शरीरकी सुन्दरताके लिये भी पक्षियोंके अंगोंकी उपमा दी जाती है। जैसे नारीके चंचल नेत्रोंको हरिणके नेत्रोंकी उपमा दी जाती है। कटिको सिंहकी कटिकी उपमा दी जाती है।

स्वामिभक्तिमें कुत्तेकी, चेष्टामें कौएकी, ध्यानमें बगुलेकी सदृशताको अच्छा समझा जाता है। कालिदासके अभिज्ञानशाकुन्तल आदि ग्रन्थोंसे विदित होता है कि ऋषियोंके आश्रममें अभयारण्य भी होते थे। जहाँ किसी पशु-पक्षीको कोई नहीं मार सकता था और सारे पशु-पक्षी आनन्दसे रहते थे। यदि कोई पशु उन्मत्त या निर्दयी होकर अन्य पशु-पक्षियोंको सताता था तो उसे भी अभयारण्यसे बाहर लाकर ही दण्ड दिया जाता था, जिससे अन्य पशु-पक्षी भयभीत न हों।

उत्तरी भारतमें ईसासे लगभग ३०० वर्ष पहले सम्राट् अशोकका राज्य था। तब शिकार खेलनेका पूर्ण निषेध था। आजके राष्ट्रध्वजमें अशोकचक्रका प्रतीक चक्रचिह्न होते हुए भी राज्यस्तरपर कसाईखाने चलें और

नये-नये खुलें, यह अशोकचक्रका अपमान या उसके साथ विश्वासघात भी है। उस समय राजाज्ञाके अनुसार वनोंमें स्वार्थवश या अज्ञानतासे या प्रमादवश आग लगाना दण्डनीय अपराध माना जाता था। आज तो प्रायः लोग सिगरेट पीकर दियासलाई डाल देते हैं और आग लग जाती है। जिसका कारण हमारे कहने और दिखा देनेमें तो अहिंसा है; परंतु कृतिमें नहीं है।

मुगल बादशाह शिकारके बड़े शौकीन थे, तो भी उनके समयमें वन्य जीवोंका संरक्षण होता था; परंतु अब तो हाथीतक मार दिये जाते हैं। अकबर सम्राट्ने हजारों चीते पाल रखे थे। अब शेर-चीते वनोंमें भी नहीं रहे। सबको मार दिया गया। भारतमें अंग्रेज आये, आबादी बढ़ने लगी। भूमिकी आवश्यकता हुई। वनोंको नगर बनानेके लिये पशुओंका विध्वंस होने लगा। कुछ लोग आखेटकर इनको मारने लगे। काठियावाड़में एक बड़े अंग्रेजने ८० शेर मारे, एक ही दिनमें १० मारे। इन शेरोंको मारनेके लिये भी सैकड़ों पशु मारे गये; क्योंकि शेरको बुलानेके लिये बकरे-भैंसे आदि आनेके स्थानपर बाँध दिये जाते हैं ताकि उस लोभसे वे आ जायँ और पीछे उनको गोली मारी जा सके।

यदि हम इन वन्य जीवोंकी हत्याकी ओरसे भी नजर ओझल कर लें तो भी निरपराध पशु-पक्षियोंके मारने-काटनेकी तो कोई आवश्यकता ही नहीं है। ये प्राकृतिक खाद्य पदार्थ भी नहीं होते हैं। इनके रहनेसे खाद्य-उत्पादन बढ़ता है। पोषक तत्त्व घी, दूध, दही, मक्खन इन्हींसे मिलते हैं। हमारे पूर्वजोंने इनका महत्त्व समझा है; उनके ये सहयोगी रहे हैं—हमारे भी हैं।

सत्ताधीशोंका कहना है कि सारे विश्वमें जितने पशु हैं उनका चतुर्थांश केवल भारतमें हैं; इसलिये इनसे खाद्य समस्या हल करनी चाहिये। प्रथम तो यह कहना ही असंदिग्ध प्रतीत नहीं होता कि भारतमें इतने पशु हैं। यदि हैं तो दूध चालीस रुपयेका एक लीटर क्यों मिलता है? घी सात सौ रुपये किलो क्यों है? जब दूध-घी आदिकी इतनी कमी है तो इनकी संख्याको मार-काटकर और भी घटाना मूर्खता और वज्रपाप तथा अपराध नहीं



ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

है तो और क्या है? यह भी कहा जाता है कि इस देशकी गाय औसतन २०० लीटर, भैंस ६०० लीटर प्रति वर्ष दूध देती है जब कि इंगलैंडकी गाय-भैंस इसका उन्नीस गुना दूध देती है। यह कहकर भी इनकी अनुपयोगिता बतलाकर जो दो सौ लीटर और छः सौ लीटर देती हैं, उनको भी सर्वथा नष्ट करनेके लिये उनकी हत्या की जाती है जबकि चारा, घास, खली आदिका प्रचुरतासे उत्पादन बढ़ाना चाहिये। ध्येय बतलाया जाता है उत्पादन बढ़ाना और नष्ट कर दिया जाता है उत्पादनके साधनको। क्या यह बुद्धिमानी है?

अब तो ऐसे कसाईखाने खोलनेकी योजना भी कार्याधीन है, जिससे हजारों पशु एक घण्टेमें ही कट जायँ। कसाईखानोंसे तो घी, दूध, दही, अन्न आदि सभीका उत्पादन घटेगा। इसलिये भारत सरकारको चाहिये कि कसाईखानोंकी योजना बन्द कर दे और जो कसाईखाने चल रहे हैं, उनको भी शीघ्रातिशीघ्र बन्द कर दे।

यह आशंका व्यर्थ है कि पशु बढ़ गये तो क्या खायेंगे। पशु अन्न नहीं खाते, वे घास खाते हैं। अन्नसे पाँचगुना घास अन्नके साथ ही पैदा हो जाती है। अलग घास भी हो जाती है। घास परिश्रमके बिना ही पैदा हो जाती है। इसलिये पशुओंके लिये अलग खाद्यकी चिन्ता करना अनावश्यक है। पक्षी भी पत्ते आदि ही खा लेते हैं। इसपर भी इन्हें घटाना है तो इनमें परिवार-नियोजन

किया जा सकता है। आवश्यकतासे अधिक नर-मादाओंको अलग रखनेकी व्यवस्था करना कठिन नहीं है। यह प्रश्न हो कि इससे तो काटकर खा लेना ही लाभकारी होगा—परंतु यह भौतिक लाभ मानवताका घातक है, भारतकी आध्यात्मिकताका विनाशक है, कृतघ्नताका द्योतक है। सारे जीवन किसीसे लाभ उठाकर अन्तमें उसे मार-काटकर खा जाना घोर कृतघ्नता, पाप और अपराध है और उन प्राणियोंका अप्रतीकार अभिशाप लेना है। जिन्हें पालना उन्हें ही खा जाना, कितना अनैतिक कार्य है!

जो पशु-पक्षी हमारे देवी-देवताओंके वाहन हों, चिह्न हों, नर-नारियोंके शरीरके उपमान हों, नक्षत्ररूप हों, एवं और भी अनेक प्रकारसे सम्मान्य और विधेय हों, और तो क्या जिनकी पूजातक होती हो—वे किसी भी दशामें वध्य नहीं हो सकते और न भक्ष्य ही हो सकते हैं। पशु-पक्षियोंकी जीवनरक्षाका धार्मिक दृष्टिसे ही उपयोग नहीं है अपितु खाद्य-समस्याकी दृष्टिसे भी बड़ा भारी उपयोग है। पशु-जीवन मानवजीवनका बड़ा भारी सहयोगी है। पशुजीवन कृषिद्वारा उत्पादनके सम्बन्धमें परावलम्बन और परतन्त्रताको मिटानेवाला है। प्रत्येक दृष्टिकोणसे पशु-पक्षियोंका संरक्षण ही उचित है। उनका वध और उसके लिये कसाईखाने चलाना असीम देश-द्रोह और भारतीय संस्कृतिके प्रति भी द्रोह है।

**प्रेरक-प्रसंग—** ————— **जो तोकौं काँटा बुवै, ताहि बोउ तू फूल!**

समर्थ रामदास शिष्योंके साथ शिवाजी महाराजके पास आ रहे थे। रास्तेमें ईंखका खेत पड़ा। शिष्योंने गन्ने तोड़-तोड़कर चूस लिये। खेतका मालिक दौड़ा। उसे देखकर शिष्य भाग गये। केवल समर्थ ही एक पेड़के नीचे बैठे थे। मालिकने सोचा—इस गोसाईंने हमारे गन्ने तुड़वाये हैं। उसने उन्हें खूब पीटा और वहाँसे भगा दिया। धरित्रीके समान अन्तरमें अपार क्षमा-शान्ति रखनेवाले समर्थने चूँतक नहीं की।

वे शिवाजी महाराजके पास पहुँचे। समर्थकी पीठपर कोड़ोंके घाव देख उन्होंने जाँच करवायी। ईखका मालिक गिरफ्तारकर उनके सामने लाया गया। शिवाने पूछा—‘गुरो! इसे क्या दण्ड दूँ?’

समर्थने शिवाजी महाराजसे उसे क्षमा कर देनेके लिये कहा। इतना ही नहीं, उन्होंने ईश्वरका वह खेत उसे इनाममें दिलवा दिया।

## लक्ष्मी कहाँ रहती हैं ?

( धर्मभूषण पं० श्रीमुकुटविहारीलालजी शुक्ल )

आज लक्ष्मीके जितने उपासक हैं, उतने किसी और देवी-देवताके नहीं हैं। स्त्री हो या पुरुष, धनवान् हो या निर्धन—सभी लक्ष्मीके कृपाकांक्षी हैं। कारण यह है कि इस युगमें जितना मान धनवान्का होता है, विद्वान्का नहीं होता। यह भ्रम इतना विस्तार कर गया है कि ‘मालदार’ आदमी और ‘बड़े’ आदमी शब्द हमारी रोजकी बोल-चालमें पर्यायवाची हो गये हैं। यदि कोई व्यक्ति ईमानदारी, योग्यता और मेहनतके द्वारा धनवान् होता है तो कोई आपत्ति नहीं है; परंतु आजकल तो कोई यह जाननेकी जरा भी चिन्ता नहीं करता कि किन साधनों और उपायोंसे अमुक व्यक्ति धनवान् बना है। चाहे रिश्वत ले, चाहे कम तौले, चाहे ब्लैक मार्केटिंग करे, चाहे झूठे मुकदमे लड़कर दूसरोंका धन अपहरण करे, चाहे लूट-खसोट, चोरी-ठगी, मार-हत्या करे, चाहे खाने-पीनेकी वस्तुओं तथा दवातकमें दूसरी चीजें मिलाकर देशका स्वास्थ्य नष्ट करे—पैसेवाला होना चाहिये। ऊपरसे देखनेमें तो यही प्रतीत होता है कि यदि सांसारिक ऐश्वर्य भोगना और प्रतिष्ठा बनाना चाहते हो तो चाहे जैसे भी हो, मालदार बनो। परंतु यदि गहराईसे देखा जाय और पुराने उदाहरणोंको एकत्रित किया जाय तो हमें इस परिणामपर पहुँचना पड़ेगा कि बेईमानीकी कमाई कुछ ही दिन अपना चमत्कार दिखाती है, फिर लोप हो जाती है। धन तो गायब हो ही जाता है, उसके साथ-साथ कथित प्रतिष्ठाकी भी इतिश्री अवश्य हो जाती है।

बेईमानीद्वारा लोग जब धनवान् बनते हैं, तब दूसरे लोग कहते हैं—‘लक्ष्मी महारानीकी उनपर बड़ी कृपा है, लक्ष्मीका उनके यहाँ वास है।’ परंतु उनका यह समझना भूल है। लक्ष्मी कदापि चोरों, लुटेरों और बेईमानोंके यहाँ निवास नहीं कर सकती। उनके यहाँ तो मायाका राज्य है, जिसका ‘चार दिनोंकी चाँदनी, फेर अँधेरा पाख’ की भाँति कुछ दिनोंतक वास रहता है, फिर कष्ट और विपत्तिरूपी अन्धकार उन्हें सहना पड़ता है।

लक्ष्मी तो सात्त्विकी देवी हैं, उनके वासके लिये सफाई और प्रकाशकी बड़ी आवश्यकता है। दीपावलीपर इसीलिये घर-घरमें लक्ष्मीके आवाहन और पूजनके लिये

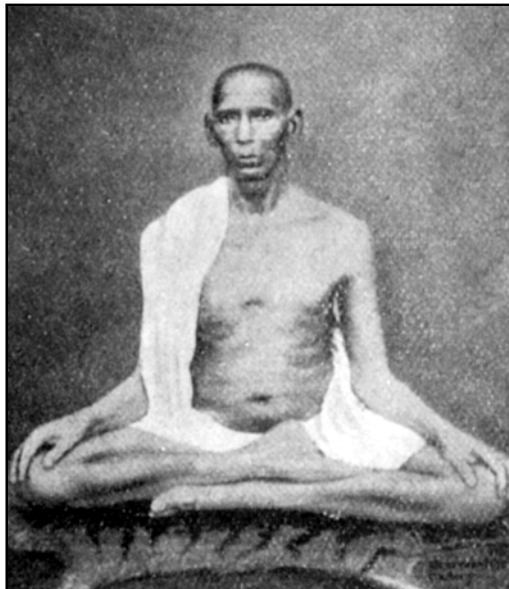
पूरे तौरपर घर, वस्त्र, आभूषण और फरनीचरकी सफाई की जाती है और दीपदानद्वारा प्रकाश किया जाता है। इसी सफाई और प्रकाशको लक्ष्मी महारानीके स्वागतके लिये लोग पर्याप्त समझते हैं। परंतु यह उनकी भूल है। इस प्रकारकी बाहरी सफाई और प्रकाशकी आवश्यकता अवश्य है, परंतु यही पूर्ण नहीं है। पूर्ण सफाईके लिये तो दिलकी सफाई करना और आत्माको प्रकाशवान् बनाना अत्यन्त आवश्यक है; क्योंकि बिना इसके लक्ष्मीका स्थायी वास नहीं होता। दिलकी सफाईका मतलब है निर्मल मन—जिसमें कपट-छलको कोई स्थान न हो, विचारों, वचनों और कर्मोंमें समानता हो, किसीके साथ दुर्व्यवहार, विश्वासघात न हो। सच्चा निष्कपट हितपूर्ण मन्त्र व्यवहार हो, सच्ची तिजारत हो। बिजलीकी रोशनी और दीपदानसे घरमें तो उजाला हो जायगा और घर सुहावना भी लगेगा। पर इससे अन्दर प्रकाशकी ज्योति नहीं जगेगी, इसके लिये—असली आनन्दकी प्राप्तिके लिये पवित्र विचार और शुद्ध भावनाके द्वारा हृदयमें दैवी प्रकाश उत्पन्न करना होगा, तभी परमानन्द प्राप्त होगा। इस प्रकारकी सफाई और शुद्धिसे जब हृदय—आत्मा ओतप्रोत हो जायगा, तब वह व्यक्ति दैवीशक्तिसे सम्पन्न हो जायगा और लक्ष्मीके नित्य वासके उपयुक्त स्थान भी वही होगा। गोस्वामी तुलसीदासजीने सत्य ही कहा है—जहाँ सुमति तहाँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहाँ बिपति निदाना ॥

अब प्रश्न यह है कि हृदयकी सफाई और प्रकाशके लिये क्या करना आवश्यक है? सबसे जरूरी यह है कि गीताके आदेशानुसार मनुष्यको यथालाभ सन्तुष्ट होना चाहिये। सन्तोष करनेसे अभिप्राय यह नहीं है कि मनुष्य हाथ-पर-हाथ धरकर बैठा रहे और फाँके करके जीवन व्यतीत करे। सन्तोषका अर्थ यह है कि अपनेको पूरा परिश्रम करनेसे जो मिल जाय, उसके लिये भगवान्को धन्यवाद दे और उसीसे अपनी गृहस्थीका काम चलाये। ज्यादा आमदनीसे आदमी मालदार नहीं बनता, यदि खर्चपर नियन्त्रण न हो। आय चाहे कितनी कम हो, यदि खर्च उसके अन्दर ही किया जाय और कुछ बचाया भी जाय तो उस दशामें धनकी बचत अवश्य होती है और

‘उन स्त्रियोंके निकट मैं नहीं रहती, जो अपनी गृहस्थीके सामान—बर्तन, वस्त्र आदि जहाँ—तहाँ फेंक देती हैं और सोच-समझकर काम नहीं करती और जो बराबर स्वामीके



## सिद्धावधूत श्रीदयालदास स्वामी



श्रीदयालदास स्वामी सिद्ध संत थे। इन्होंने पंजाबके कपियाल नामक ग्राममें जन्म ग्रहण किया था। इनके पिता बड़े साधुसेवी थे, जिसके कारण इन्हें बाल्यकालमें ही साधुसंगति प्राप्त हुई। फलस्वरूप बारह वर्षकी उम्रमें उन्होंने गृहत्याग कर दिया और पटियाला जिलाके बसेरा गाँवमें जाकर परमहंस बाबा ठाकुरदाससे दीक्षा और संन्यास ग्रहण किया। इसके बाद उन्होंने पन्द्रह वर्षतक गुप्त रहकर बड़ी तीव्र साधना की। सद्गुरुकी कृपासे इष्टदेवका अनुग्रह हुआ। जब गुरुदेवकी समाधि हो गयी तब इन्होंने वहाँ एक बहुत बड़ा भण्डारा किया, जिसमें दस हजारके लगभग लोगोंने भोजन किया। अब इनकी सिद्धि मशहूर हो चली थी, इसलिये उस स्थानको छोड़कर तीर्थयात्राके लिये निकल पड़े। परंतु इनका स्वभाव इतना सरल और प्रेमी था कि रास्तेमें अनेकों पन्थके लोग इनके साथ हो जाते और पारस्परिक वैमनस्य छोड़कर इनकी सेवा करने लगते। ये सभीको प्रेमदृष्टिसे देखते, इनके मनमें अपनी प्रधानताका घमण्ड कभी आया ही नहीं। ये स्वतन्त्र आसन या गद्दीपर नहीं बैठते। कुशासन या बालूका आसन ही पसन्द करते। राजासे लेकर साधारण पुरुषतक इनकी प्रशंसा करते थे। इनके हजारों साधुओंकी सेवाकी बात उस दिन सन् १९३० प्रयाग कुम्भमेलाके विवरणके स्तम्भे कलकत्ताके

‘संजीवनी’ आदि मासिक पत्रोंमें भी प्रकाशित हुई थी। उनकी तीर्थयात्राके अवसरपर मार्गमें अनेकों व्यक्ति आकर दर्शन करते और उनसे सदुपदेश लाभ करते। जब लोग पूछते कि कोई असुविधा तो नहीं है? तब ये बड़े प्रेमसे समझाते कि ठण्डकके कारण नींद न आनेसे भजनमें बड़ी सुविधा रहती है, सुतरां कोई कष्ट नहीं है। इनके जीवनमें कई अलौकिक घटनाएँ भी घटी हैं।

एक दिन इनके पास एक पाण्डित्याभिमानी ब्राह्मणने आकर पूछा, ‘आप कौन स्वामी हैं?’ इन्होंने कहा, ‘मैं केवल स्वामी ही नहीं हूँ, दासस्वामी हूँ।’ उन्होंने कहा, ‘संन्यासी तो कभी दास नहीं होते, स्वामी ही होते हैं।’ इसपर महाराजने कहा कि ‘भैया! अपने-अपने शिष्योंके सामने सभी स्वामी होते हैं और गुरुओंके सामने सभी दास होते हैं। अतः संन्यासीमात्र ही स्वामी और दास दोनों होते हैं।’ इसपर ब्राह्मणने पूछा, ‘आप किस मठके संन्यासी हैं?’ इन्होंने कहा, ‘मैं गगनमठका संन्यासी हूँ।’ उसने कहा, ‘गगनमठका नाम तो मैंने कभी नहीं सुना है।’ स्वामीजीने पूछा, ‘तुमने कितने मठोंका नाम सुना है?’ ब्राह्मणने कई मठोंके नाम गिनाये। स्वामीजीने कहा, ‘ये मठ सनातनकालसे हैं या किसीने इन्हें बनवाया है?’ ब्राह्मणने कहा, ‘शंकराचार्यद्वारा इन मठोंका निर्माण हुआ है।’ स्वामीजीने कहा कि ‘श्रीशंकराचार्य और उनके गुरु श्रीगोविन्दपादस्वामी किस मठके संन्यासी थे?’ ब्राह्मण निरुत्तर हो गया। स्वामीजीने कहा, ‘पिता-माता और सब परिचयोंका त्याग करके मान-प्रतिष्ठा और कीर्तिका त्याग करके जिसने संन्यास ग्रहण किया है, क्या उसे और परिचय देनेकी आवश्यकता है? जहाँ साम्प्रदायिक परिचय है, वहाँ शरीराभिमान भी अवश्य है। शंकराचार्य और उनकी गुरुपरम्परा किसी मठसे सम्बद्ध नहीं है, अतः मैं कहता हूँ कि मैं गगनमठका संन्यासी हूँ।’ स्वामीजीके इस विचारपूर्ण वार्तालापसे उन ब्राह्मणदेवताका भ्रम दूर हो गया और वे इनके शरणागत हुए।

स्वामीजी महाराज दैवी सम्पत्तिपर बड़ा जोर देते थे। इनका कहना था कि सदाचार ही साधुका जीवन

काशी-योगाश्रमकी स्थापना करनेवाले प्रसिद्ध वाग्मी संन्यासी श्रीकृष्णानन्दजी (पूर्वनाम श्रीकृष्णप्रसन्न सेन) इन्हीं महात्माके शिष्य थे।

कुल्हाड़ीको) सुगन्धसे सुवासित कर देता है। इसी गुणके कारण चन्दन देवताओंके सिरोंपर चढ़ता है और जगत्का प्रिय हो रहा है और कुल्हाड़ीके मुखको यह दण्ड मिलता है कि उसको आगमें जलाकर फिर घनसे पीटते हैं। संत विषयोंमें लम्पट (लिप्त) नहीं होते, शील और सद्गुणोंकी खान होते हैं। उन्हें पराया दुःख देखकर दुःख और सुख देखकर सुख होता है। वे [सबमें, सर्वत्र, सब समय] समता रखते हैं, उनके मनमें किसीके प्रति शत्रुता नहीं होती, वे मदसे रहित और वैराग्यवान् होते हैं तथा लोभ, क्रोध, हर्ष और भयका त्याग किये हुए रहते हैं। उनका चित्त बड़ा कोमल होता है। वे दीनोंपर दया करते हैं तथा मन, वचन और कर्मसे मेरी निष्कपट (विशुद्ध) भक्ति करते हैं। सबको सम्मान देते हैं, पर स्वयं मानरहित होते हैं। हे भरत! वे प्राणी (संतजन) मेरे प्राणोंके समान हैं। उनको कोई कामना नहीं होती। वे मेरे नामके परायण होते हैं। शान्ति, वैराग्य, विनय और प्रसन्नताके घर होते हैं। उनमें शीतलता, सरलता, सबके प्रति मित्रभाव और ब्राह्मणके चरणोंमें प्रीति होती है, जो धर्मोंको उत्पन्न करनेवाली है। हे तात! ये सब लक्षण जिसके हृदयमें बसते हों, उसको सदा सच्चा संत जानना।

कहानी—

# ‘गोषु पाप्मा न विद्यते’

( श्रीसुदर्शनजी सिंह ‘चक्र’ )

‘कृष्णा चरने ही नहीं जा रही है! उसे पशुओंके साथ दूर ले जानेको कहिये!’ मैं बात पूरी करूँ, इससे पहले दौड़ती-कूदती कृष्णा भड़भड़ाकर मेरी कोठरीमें घुस आयी। उसने जल्दी-जल्दी मुझे सिर, भुजा, पेट, पैरके समीप कई बार सूँघा और फिर शान्त खड़ी हो गयी।

कृष्णा आश्रमकी गाय है। बड़े प्रयत्नसे ढूँढ़कर लायी गयी है। उसके खुर, थन, जिह्वादि सब कृष्णवर्ण हैं। पूरे लक्षण हैं उसमें कृष्णा गौके। मैं भोजन करके उठता हूँ तो हाथ धोकर उसे दो रोटी देता हूँ। वह दूर भी चरती हो तो मेरे पुकारनेपर हिरनीकी भाँति छलाँग लगाती आती है।

मुझे इधर कलसे ज्वर आने लगा है। साधारण मलेरिया है; किंतु चारपाई पकड़नेको तो उसने मुझे विवश कर ही दिया है। परंतु इस गायसे किसने कह दिया कि मैं रोगशय्यापर हूँ? कल प्रातः चरवाहेने उसे खोला तो सीधे दौड़ती मेरी कोठरीमें घुस आयी। तबसे अबतक उसे जैसे चारा-पानी रुचता नहीं है। चरवाहा बार-बार हाँक ले जाता है। बड़ी कठिनाईसे मेरे बार-बार पुचकारनेपर जाती है और पाँच-दस मिनटमें फिर दौड़ती हुंकार करती कोठरीमें आ खड़ी होती है। मुझे बार-बार सूँघती है और नेत्रोंसे अश्रु गिराती है। इसे चरने तो जाना ही चाहिये।

चरवाहा कृष्णाको फिर हाँक ले गया है और मुझे पड़े-पड़े स्मरण आ रहा है कि बचपनमें घरपर आठ-दस गायें थीं—हृष्ट-पुष्ट सुन्दर गायें। छोटे चाचा ही उन्हें चराते और उनकी सेवा करते थे। गायोंमें ही जैसे उनके प्राण बसते थे। एक बार किसी बातपर क्रोधमें आकर पिताजीने छोटे चाचाको एक थप्पड़ मार दिया। थप्पड़ लगा और तीन-चार गायोंने झटके देकर अपने रस्से तोड़ डाले। छोटे चाचा बड़े

दृढ़ शरीरके और फुर्तीले थे। उन्होंने पिताजीको बिजलीकी तेजीसे भुजाओंमें उठा लिया और भूसा रखनेवाली कोठरीमें डालकर बाहरसे द्वार बन्द कर दिया। गायोंको बड़ी कठिनाईसे वे फिर बाँध पाये। कोठरी खोलकर उन्होंने पिताजीसे कहा था—‘भैया! इनके सामने मुझे मत मारना! ये पशु तो कुछ समझते नहीं। आज अनर्थ होते-होते बच गया।’

‘इतनी कृतज्ञता गायमें होती है!’ मैं अधिक सोच सकता तब, जब कृष्णा फिर न आ खड़ी होती। वह फिर आ गयी है। मुझे सूँघने लगी है। मैं उसके मुखपर हाथ फेरकर उसे समझानेकी चेष्टामें हूँ—‘मुझे कुछ नहीं हुआ। मैं ठीक हूँ। तुम चरने जाओ। तुम्हारा पेट गड़्ढा बन गया है। तुम कलसे भूखी हो।’ काश, वह मेरी बात समझती होती।

‘किंतु गाय कुछ पानेकी भी कहाँ प्रतीक्षा करती है? वह तो केवल स्नेह देखती है।’ कृष्णाको फिर चरवाहा ले गया है और मैं फिर सोचने लगा हूँ। रोगी मनुष्य खाटपर पड़े-पड़े दूसरा क्या करेगा। मैं सोच रहा हूँ उन दिनोंकी बात, जब एक बड़े नगरके समीप रहता था, नगरसे बाहर एक मन्दिरके घेरेमें। प्रतिदिन नौ बजेके लगभग वहाँसे चलकर नगरमें आता कार्यालयमें, और सायंकाल लौट जाता। एक मुसलमान घोसी अपनी गायें प्रातः चराने लाया करता था उधर। एक दिन मैंने समीप चरती एक बड़ी बछड़ीको पुचकार लिया। दो क्षण उसपर हाथ फेर दिये। दो गायें और पास आ खड़ी हुईं। उनकी गर्दन भी सहलाई। बस, उनसे जान-पहचान हो गयी। वे दूर भी चरती होती थीं और मैं नगर जानेके लिये निकलता था तो देखते ही दौड़ी आती थीं। मुसलमान घोसी युवक कहता था—‘ये मेरे पास भी इस तरह दौड़कर नहीं आतीं।’

वहाँ बन्दर बहुत थे। प्रायः सब लाल मुँहके ही



थे। एक दिन एक मोटा लाल मुखका बन्दर मुझे डरानेको झपटा; किंतु उसे एक बछड़ीने दौड़ा ही तो लिया। दूरतक दौड़कर जब वह पेड़पर चढ़ गया, तब भी वह उस पेड़के नीचे खड़ी रही क्रोधमें भरी। उसके सामने यह बन्दर मुझे काटने दौड़ता है, यह बात बछड़ीसे सहन नहीं हुई थी। मैं भला क्या देता हूँ इन सबको। मेरे पास देनेको वहाँ धरा भी क्या था। भोजन तो मैं नगरमें करके जाया करता था। किंतु गायको पदार्थकी उतनी अपेक्षा नहीं है, जितनी स्नेहकी है। यह सर्वदेवमयी—देवता और भगवान् केवल भावके भूखे होते हैं। गायके सम्बन्धमें भी यही बात कहनेमें मुझे कोई हिचक नहीं है।

× × ×

‘आप तनिक दूर ही रहिये! बहुत दुष्ट है यह बैल!’ मुझे चेतावनी दी गयी। जिनकी गायका यह बछड़ा है, वे तंग आ चुके थे। नाथमें दो लम्बी रस्सियाँ बँधी थीं। दो व्यक्ति उन रस्सियोंको दोनों ओरसे पकड़कर तब उसे एक स्थानसे दूसरे खूँटेपर करते थे। बाँसमें लटकाकर दूरसे उसे घास डाली जाती थी। अब वह बैल गाँव भेज देनेको मेरे पास आया था। ऊँचा, असाधारण बलिष्ठ और क्रोधी बैल।

‘गोजाति निर्दोष होती है। लगता है कि इसे बहुत तंग किया गया है!’ मेरे मनने कहा। बच्चे प्रायः छोटे बछड़ोंको छेड़-छेड़कर उन्हें मारना सिखा देते हैं। इस बैलके साथ भी यही हुआ था। मैंने थोड़ी हरी घास हाथमें ली और बैलकी ओर वह मुट्ठी बढ़ा दी। बैलने फुंकार की; किंतु घास वह खाने लगा। दूसरी मुट्ठी मैंने कुछ निकट जाकर दी। फुंकार ढीली पड़ गयी। उसी शाम मैं उसके पास खड़ा उसपर हाथ फेरने लगा था और वह मुझे सूँघ रहा था। एक सप्ताहमें उसकी नाथमें रस्सी बाँधना अनावश्यक हो गया। कोई बच्चा उसे एक स्थानसे दूसरे खूँटेपर निःशंक बाँध सकता था।

‘कृष्णा!’ उस दिन यह अपनी कृष्णा ही बिफर

गयी थी। गर्मियोंमें इस ओर पशु बाँधे नहीं जाते। कृष्णा भी कई महीने बँधी नहीं थी। रात्रिमें दूसरे पशुओंके साथ गोशालामें बन्द कर दी जाती थी। वर्षाके प्रारम्भमें खेतमें पशु बाँधनेकी बात हुई। दूसरे पशु बँध गये किसी प्रकार; किंतु कृष्णाको जब बहुत दौड़ाया—तंग किया गया तो वह बिफर उठी। अन्तमें मुझे पुकारा गया। मैंने जाकर तनिक रूखे स्वरमें डाँटा—‘कृष्णा! तुम यह क्या करने लगी हो? तुम माता होकर मारने दौड़ती हो! छिः!’ गायने जैसे मेरी बात समझ ली। वह मेरे पास आकर चुपचाप खड़ी हो गयी। उस रात वह बाँधी नहीं गयी; किंतु पूरी रात मेरे तख्तेके समीप बैठी रही।

गाय हो या बैल—गोजाति मानधनी है। देवता सम्मानप्रिय होते हैं ही। कोई-कोई पशु अत्यधिक भावुक होता है। आप उसको छेड़ेंगे, उसके प्रति असम्मान दिखायेंगे तो उसमें क्रोध आयेगा। इस प्रकार वह सबसे सशंक, सबको मारनेवाला बन जायगा। किंतु उसमें हिंसाकी वृत्ति नहीं है। वह स्वभावसे निष्पाप है। अपराध उसे स्पर्श नहीं करते।

यह गाय दूध भरपूर देती है; किंतु इससे सावधान भी बहुत रहना पड़ता है! एक अच्छे गोसेवकके यहाँ जब मैं गया तो उन्होंने अपनी एक गाय दिखलाते हुए बतलाया—‘इतना क्रोधी पशु मुझे कभी नहीं मिला है।’

‘माँ! बात क्या है? तुम मारोगी मुझे?’ वे गायोंसे प्रेम करते हैं। उनपर भी कोई गाय मारने झपटती है, यह बात मुझे अटपटी लगी। मैं उस गायके पास ही चला गया। मारना ही हो तो वह मुझे पूरी चोट पहुँचाये, जिससे उसमें पश्चात्ताप तो जागे। किंतु गायने सिर हिलानेके स्थानपर मेरा हाथ चाटना प्रारम्भ कर दिया।

‘आपपर यह प्रसन्न है!’ वे समीप आने लगे तो गाय सचमुच उन्हें मारने झपटी। बात प्रकट हो गयी, दुहते समय पैर बाँधकर उसे बहुत तंग किया जाता था। अपना अपराध जब वे समझ गये, गोमाताको सानुकूल होनेमें कितने दिन लगने थे। केवल एक समय दूध नहीं

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

मिला। दूसरे समय गायने स्वयं पैरमें रस्सी लगा लेने दी।  
दूध थनमें रहनेसे उसे भी तो कष्ट हो रहा था।

क्या धरा है। यह तो पापोंको पुतला है। वेश देखकर भ्रममें पड़नेसे कोई लाभ तुम्हें नहीं होगा।’

$\times$                        $\times$                        $\times$

स्वार्थ अन्धा होता है। उस व्यक्तिने वह चरणरज

गायके सबसे बड़े प्रभावका पता तो मुझे नहीं है; क्योंकि उसके अपार प्रभावका अनुमान कर पाना ही सम्भव नहीं। वह कामधेनु है—श्रद्धा-सेवित होनेपर प्रत्येक गाय कामधेनु है। किंतु मुझे गायने एक अद्भुत महिमा जाननेका अवसर अवश्य एक बार दिया है।

उस स्त्रीको लगायी; किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। अब वहाँ बैठे सभी लोगोंने महात्माजीसे ही पूछा—‘निष्पाप पुरुष कहाँ मिलेगा?’

एक वृद्ध महात्माके दर्शन करने गया था। अब वे कहाँ हैं—उनका शरीर है भी या नहीं, पता नहीं। उनके पास और भी कुछ लोग बैठे थे। मैं भी प्रणाम करके बैठ गया। इतनेमें एक रोगीको लेकर दो-तीन व्यक्ति आये। रोगी स्त्री थी, युवती थी और अत्यन्त पीड़ामें थी। उसके पूरे शरीरमें भयंकर ऐंठन थी। हाथ, पैर, सिर सब अकड़े जाते थे। चीखती थी, छटपटाती थी। उसका क्रन्दन किसीका भी हृदय हिला देता।

‘निष्पाप मनुष्य या निष्पाप प्राणी?’ मैंने पूछ लिया; क्योंकि महात्माजी भी निष्पाप मनुष्यका पता जानते होंगे, ऐसा कोई संकेत उन्होंने नहीं दिया।

‘सब कर्मका भोग है!’ महात्माने शान्त स्वरमें कहा—‘अपने पापकर्मका फल अपने ही सिर तो आयेगा। किंतु इसकी पीड़ा बहुत घट जायगी, यदि किसी निष्पापकी चरणरज इसके शरीरमें लगा दी जाय!’

‘निष्पाप प्राणी हो तो भी ठीक है; किंतु महात्माजीने कहा—‘नारायण, मनुष्य ही निष्पाप नहीं होगा तो पशु-पक्षी कहाँसे निष्पाप होंगे, वे तो कर्मयोनिमें हैं ही पापभोगके लिये।’

उस व्यक्तिने, जो स्त्रीके साथ आया था, महात्माजीकी ही चरणरज उठायी तो वे बोले—‘नारायण ! इस धूलिमें

‘अपने पाप वे भोगते हैं। किंतु उनमें एक प्राणीका शरीर शास्त्र निष्पाप तथा परम पवित्र कहता है!’ मैं उठ खड़ा हुआ था—‘यह गाय सर्वथा निष्पाप है।’

पासमें एक बूढ़ी गाय चर रही थी। उसके खुरोंके चिह्नकी धूलि में उठा लाया और गायकी महिमा उसी समय मुझे देखनेको मिली। उस स्त्रीका चिल्लाना-रोना धूलि लगाते ही बन्द हो गया। महात्माजी उठकर उस बूढ़ी गायको भूमिमें पड़कर दण्डवत्-प्रणिपात कर रहे थे।

# गौ-महिमा

गावः प्रदक्षिणी कार्या वन्दनीया हि नित्यशः । मङ्गलायतनं दिव्याः सृष्टास्त्वेताः स्वयम्भुवा ॥  
अप्यागाराणि विप्राणां देवतायतनानि च । यद्गोमयेन शुद्ध्यन्ति किं ब्रूमे ह्यधिकं ततः ॥  
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिस्तथैव च । गवां पञ्च पवित्राणि पुनन्ति सकलं जगत् ॥  
गावो मे चाग्रतो नित्यं गावः पृष्ठत एव च । गावो मे हृदये चैव गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥

[ महर्षि आपस्तम्ब राजा नभगसे कहते हैं—हे राजन् ! ] गौओंकी परिक्रमा करनी चाहिये । वे सदा सबके

लिये वन्दनीय हैं। गौएँ मंगलका स्थान हैं, दिव्य हैं। स्वयं ब्रह्माजीने इन्हें दिव्य गुणोंसे विभूषित बनाया है। जिनके गोबरसे ब्राह्मणोंके घर और देवताओंके मन्दिर भी शुद्ध होते हैं, उन गौओंसे बढ़कर अन्य किसको बतायें। गौओंके मूत्र, गोबर, दूध, दही और घी—ये पाँचों वस्तुएँ पवित्र हैं और सम्पूर्ण जगत्को पवित्र करती हैं। गायें मेरे आगे रहें,

Hinduism Discord Server <https://dsc.gg/dharma> MADE WITH LOVE BY Avinash/Shr

## साधनोपयोगी पत्र

(१)

### परम कल्याण

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। कृपापत्र मिला, धन्यवाद। आपके प्रश्नका उत्तर इस प्रकार है—

द्वादशाक्षर मन्त्र बड़े महत्त्वका है। उसके जपसे अवश्य कल्याण हो सकता है। प्रतिदिन अधिक-से-अधिक जितना हो जाय, उतना प्रेमपूर्वक जपना चाहिये। यह बताना कठिन है कि कितने दिनोंमें परम कल्याणकी प्राप्ति हो सकती है। यदि परम कल्याणका अर्थ है, भगवान्‌का प्रत्यक्ष साक्षात्कार, तब तो यह साधककी अवस्थापर निर्भर है। अन्यथा जप करनेवालेका परम कल्याण तो अव्यक्तरूपसे होता ही रहता है। प्रतिक्षण होता है। जिस साधकका भगवान्‌में जितना अधिक प्रेम होगा, जो प्रभुके दर्शनके लिये जितना ही आकुल-व्याकुल होगा, उतना ही शीघ्र उसे भगवान्‌का दर्शन मिल सकता है। यह साधकके अधीन नहीं, भगवान्‌की कृपाके अधीन है। आर्तभावसे पुकारनेपर शीघ्र कृपा होती है। शेष प्रभुकृपा।

(२)

### जगत्‌का स्वरूप

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। पत्र मिला, धन्यवाद। आप दुखी हैं, आपको जगत्‌में अपमान मिल रहा है, आपके पास स्वस्थ तन नहीं और बुद्धि नहीं है, इसीलिये सुख नहीं है—ऐसी आपकी धारणा है।

यदि वस्तुतः आपकी ऐसी ही परिस्थिति है तो आपको प्रसन्न होना चाहिये। इसी अवस्थामें मनुष्य जगत्‌की ओरसे मोह-ममता हटाकर भगवान्‌की ओर लगता और बढ़ता है। भगवान्‌ जिसपर बड़ी दया करते हैं, उसीके सामने ऐसी परिस्थिति लाकर रखते हैं। निश्चय ही भगवान्‌ आपपर कृपादृष्टि डाल रहे हैं, आपको अपनी शरणमें लेनेको उत्सुक हैं, अब आपका काम है कि इस परिस्थितिसे लाभ उठायें। संसारके मनुष्य यहाँ दुःख और अपमान पाकर भी

इसीमें रचे-पचे रहते हैं। सौभाग्यकी बात है कि आपको जगत्‌के स्वरूपका वास्तविक अनुभव हुआ। अब आप यह निश्चय करें कि दीनबन्धु भगवान्‌के सिवा कोई भी अपना नहीं है। यह जगत्‌, यह शरीर अनित्य और दुःखरूप है—‘अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम्’—इसे पाकर भगवान्‌का भजन करो। भजन ही जीवनका सार है।

आप सुख, स्वास्थ्य, धन, मान या अपना उद्धार जो कुछ भी चाहें, सबकी प्राप्तिका एकमात्र उपाय है—भगवान्‌का भजन। भजन करनेमें कोई कठिनाई नहीं है। अपना तन, मन, धन जो कुछ भी अपना कहा जानेवाला हो, सब कुछ मनसे भगवान्‌को अर्पण कर दें, आप भगवान्‌के हो जायँ। सोयें भगवान्‌के लिये, जागें भगवान्‌के लिये। सब कार्य, सारी चेष्टा भगवान्‌के लिये हो; भगवान्‌ ही अपने लक्ष्य, अपने प्राणोंके आराध्य बन जायँ। ऐसी अवस्थामें जो सुख मिलेगा, उसकी कहीं तुलना नहीं है। आप घर न छोड़ें, काम न छोड़ें, केवल भगवान्‌से नाता जोड़ लें, उनके ही हो जायँ। सब कार्य भगवान्‌का चिन्तन करते हुए करें। बस, बेड़ा पार है। शेष प्रभुकृपा।

(३)

### सेवाका रहस्य

प्रिय महोदय! सादर हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि हमारी सेवावृत्ति आज बड़ी ही मलिन और सेवाके नामको कलंकित करनेवाली हो रही है। तभी इस प्रकारकी घटनाएँ होती हैं। मानवकी कामोपभोगपरायणता, अधिकारलिप्सा, अर्थकामना, मान-सम्मानकी तृष्णा और स्वार्थपरायणतासे सेवाको सर्वथा कुत्सित कर दिया है। सेवा आज या तो वह प्रतारणामयी छोटी-सी कीमत है, जिसे देकर बदलेमें बहुत बड़ा मान-सम्मान या पद-अधिकार चाहा जाता है या एक प्रकारकी रिश्वत है, जिसे देकर नीच स्वार्थ-साधनकी चेष्टा की जाती है। आज

इसी प्रकार सेव्य भी यदि सेवा ग्रहण करनेमें ही अपना गौरव समझता है और सदैव सेवा ग्रहण करनेके लिये सज-धजकर बैठा रहता है तो वहाँ भी यथार्थ सेवा नहीं होती है। सेव्यके हृदयमें भी असलमें सेवकका सेवक बननेकी आकांक्षा होनी चाहिये। उसकी भी सेवकके साथ ऐसी एकात्मता होनी चाहिये कि वह सेवकके सुखमें ही सुखका अनुभव करे। सेवा वस्तुतः बड़े ही महत्त्वकी वस्तु है। इसीसे सच्ची सेवाका फल बड़ा ही मधुर और अनिर्वचनीय होता है और उसे देते भी हैं अनिर्वचनीय मधुरातिमधुर श्रीभगवान् ही। शेष प्रभुकृपा।

| तिथि                           | वार   | नक्षत्र                      | दिनांक | मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि                                                       |
|--------------------------------|-------|------------------------------|--------|-----------------------------------------------------------------------------------------|
| प्रतिपदा रात्रिमें ११।१७ बजेतक | गुरु  | मृगशिरा दिनमें ३।४१ बजेतक    | १४ जून | ×                                                                                       |
| द्वितीया " ८।५२ बजेतक          | शुक्र | आर्द्रा " २।७ बजेतक          | १५ "   | ×                                                                                       |
| तृतीया सायं ६।२३ बजेतक         | शनि   | पुनर्वसु " १२।२६ बजेतक       | १६ "   | ×                                                                                       |
| चतुर्थी दिनमें ३।५५ बजेतक      | रवि   | पुष्य " १०।४८ बजेतक          | १७ "   | ×                                                                                       |
| पंचमी " १।३४ बजेतक             | सोम   | आश्लेषा " ९।१२ बजेतक         | १८ "   | मिथुनसंक्रान्ति सायं ६।१३ बजे।                                                          |
| षष्ठी " ११।२३ बजेतक            | मंगल  | मघा " ७।४७ बजेतक             | १९ "   | भद्रा रात्रिशेष ५।९ बजेसे, कर्कराशि प्रातः ६।५१ बजेसे।                                  |
| सप्तमी " ९।२६ बजेतक            | बुध   | पूर्वाषाढा प्रातः ६।३६ बजेतक | २० "   | भद्रा दिनमें ३।५५ बजेतक, श्रीवैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, मूल दिनमें १०।४८ बजेसे।       |
| अष्टमी दिनमें ७।५० बजेतक       | गुरु  | उषाषाढा प्रातः ५।४६ बजेतक    | २१ "   | सिंहराशि दिनमें ९।१२ बजेसे।                                                             |
| नवमी प्रातः ६।३७ बजेतक         | शुक्र | हस्त " ५।१६ बजेतक            | २२ "   | मूल दिनमें ७।४७ बजेतक।                                                                  |
| दशमी " ५।४९ बजेतक              | शनि   | स्वाती अहोरात्र              | २३ "   | भद्रा दिनमें ९।२६ बजेसे रात्रिमें ८।३८ बजेतक, कन्याराशि दिनमें १२।२३ बजेसे।             |
| एकादशी " ५।३१ बजेतक            | रवि   | स्वाती प्रातः ५।३७ बजेतक     | २४ "   | सायन कर्कका सूर्य १०।१९ बजे।                                                            |
| द्वादशी " ५।४४ बजेतक           | सोम   | विशाखा " ६।३३ बजेतक          | २५ "   | तुलाराशि सायं ५।१४ बजेसे, आर्द्राका सूर्य सायं ६।४६ बजे।                                |
| त्रयोदशी " ६।२९ बजेतक          | मंगल  | अनुराधा दिनमें ७।५९ बजेतक    | २६ "   | भद्रा सायं ५।४० बजेसे।                                                                  |
| चतुर्दशी दिनमें ७।४० बजेतक     | बुध   | ज्येष्ठा " ९।५२ बजेतक        | २७ "   | भद्रा प्रातः ५।३१ बजेतक, निर्जला ( भीमसेनी ) एकादशीव्रत ( सबका )।                       |
| पूर्णिमा " ९।१५ बजेतक          | गुरु  | मूल " १२।७ बजेतक             | २८ "   | सोमप्रदोषव्रत।                                                                          |
|                                |       |                              |        | मूल दिनमें ७।५९ बजेसे।                                                                  |
|                                |       |                              |        | भद्रा दिनमें ७।४० बजेसे रात्रिमें ८।२८ बजेतक, धनुराशि दिनमें ९।५२ बजेसे, व्रत-पूर्णिमा। |
|                                |       |                              |        | पूर्णिमा, मूल दिनमें १२।७ बजेतक।                                                        |



## पढ़ो, समझो और करो

(१)

### ‘घरमें ही झगड़ा निबटा लें’

‘मुकदमा लड़नेसे क्या फायदा, आपलोग आखिर भाई-भाई ही तो हैं। कचहरीमें परेशानीके सिवा और क्या मिल सकता है? कोर्ट-कचहरीको भूल जाइये, आपसमें मेलसे रहें, घरमें ही झगड़ा निबटा लें।’ ये शब्द एक प्रसिद्ध वकीलने ऐसे व्यक्तिसे कहा था, जो उन्हें अपना मुकदमा लड़नेके लिए वकील नियुक्त करने आया था। वह व्यक्ति इस वकीलके पास इस आशासे आया था कि हमारी ओरसे वे वकालत करेंगे तो हम अवश्य ही मुकदमा जीत जायेंगे, पर उसे बड़ी निराशा हुई। वह लौटा और राहमें अपने साथियोंसे कहने लगा—‘यह वकील तो बड़ा खराब निकला, धर्मका उपदेश देने लगा।’ कुछ साथियोंने उसकी इस बातका समर्थन किया, पर एकने कहा—‘नहीं भाई! इस वकीलकी बात ठीक है, यह सत्य कह रहा है। अन्य कोई वकील ऐसी बातें नहीं करेगा, सदा रुपये ऐंठनेके फेरमें ही रहेगा। वकील जब समझौताका उपदेश देगा तो उसकी वकालत कैसे चलेगी? उसे फीस कौन देगा? रुपयेके लिये ही तो सारे वकील कोर्टमें आते हैं। यह वकील आगे चलकर महान् व्यक्ति बनेगा।’ दूसरा बोला—‘हाँ भाई! इस वकीलमें कुछ आध्यात्मिक ज्ञान है, तभी तो रुपये ऐंठनेके ढंगको बुरा समझता है तथा न्यायका मार्ग बतलाता है। चलो, कचहरी न जाकर हमलोग आपसमें मेल करनेकी कोशिश करेंगे।’ उपर्युक्त बातें सन् १९१६ ई० की हैं। उस समय बिहार राज्य बंगालसे अलग हो चुका था। पटनामें हाईकोर्ट बन गया था। इस वकीलकी वकालत खूब चमकी हुई थी। उस समय इनकी उम्र ३०-३२ वर्षकी थी। यही वकील समय आनेपर भारतके प्रथम राष्ट्रपति बने। उनका नाम था डॉ० राजेन्द्र प्रसाद।

—उमेश प्रसाद सिंह

(२)

### धर्मकी बहन

आजसे ६१ वर्ष पूर्वकी घटना है, उस समय मेरी उम्र मात्र छः माहकी थी। मुझसे पूर्व तीन बालकोंके चेचकसे दिवंगत हो जानेके बाद मेरा जन्म हुआ था। अतः मैं अपने माता-पिताका अत्यन्त लाडला था। एक बारकी बात है, अचानक मेरे कानमें दर्द होना प्रारम्भ हुआ, जो किसी दवासे शान्त ही नहीं हो रहा था। किसीने बताया कि मेरे गाँवसे १५ किमी० दूर एक गाँवमें एक ढोलण (ढोल बजानेवाली महिला) इसका इलाज करती है। मेरे पिताजी मुझे लेकर उसके पास गये और कहा—ढोलणजी! मेहनताना जो चाहे ले लो, परंतु मेरे बच्चेको तुरंत ठीक कर दो। चार दिनसे त्राहि-त्राहि कर रहा है, न इसने नींद ली और न हमने। मेरे एक यही लड़का बचा है, तीनको चेचक निगल गयी।

महिला घरमें गयी और एक कपड़ेकी पोटलीमें बँधी हुई दवा लेकर आयी। पानीमें भिगोकर दो बूँद कानमें टपकायी। तीन मिनटके बाद कानपर हाथ रखकर सिरको टेढ़ा किया। दवाके साथ-साथ कुलबुलाते कीड़ोंका ढेर हथेलीपर दिखायी दिया। मेरा रोना बन्द हुआ। माँकी गोदमें ही सो गया। पिताजीने राहतकी साँस ली। उसको मेहनतानेके रुपये देने लगे। महिलाने रुपया लेनेसे इनकार करते हुए कहा—मेरे कोई भाई नहीं है, अतः मैं इसे धर्मका भाई मानती हूँ। भाईसे कोई मेहनताना लेता है?

पिताजी पसोपेशमें पड़ गये। एक शूद्र महिलासे ब्राह्मणका रिश्ता कैसे निभेगा? परंतु अचानक उनके हृदयमें स्नेह उमड़ा। वे तुरंत बाजार गये। एक चुनरी लाकर उस महिलाको ओढ़ाते हुए बोले—जब तुम इसे अपना धर्मभाई मानती हो तो तुम मेरी धर्मकी बेटी हुई। लो, मेरा नाम-पता। समय मिले तब अपने पीहर आना। आजसे तुम्हारा नाम दरिया रहेगा।







## मनन करने योग्य

### किसीकी हँसी उड़ाना उसे शत्रु बनाना है

धर्मराज युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ समाप्त हो गया था। वे भूमण्डलके चक्रवर्ती सम्राट् स्वीकार कर लिये गये थे। यज्ञमें पथारे नरेश तथा अन्य अतिथि-अभ्यागत विदा हो चुके थे। केवल दुर्योधनादि बन्धुवर्गके लोग तथा श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें रह गये थे।

राजसूय यज्ञके समय दुर्योधनने पाण्डवोंका जो विपुल वैभव देखा था, उससे उसके चित्तमें ईर्ष्याकी अग्नि जल उठी थी। उसे यज्ञमें आये नरेशोंके उपहार स्वीकार करनेका कार्य मिला था। देश-देशके नरेश जो अकल्पित मूल्यकी अत्यन्त दुर्लभ वस्तुएँ धर्मराजको देनेके लिये ले आये, दुर्योधनको ही उन्हें लेकर कोषागारमें रखना पड़ा। उनको देख-देखकर दुर्योधनकी ईर्ष्या बढ़ती ही गयी। यज्ञ समाप्त हो जानेपर जब सब अतिथि चले गये, तब एक दिन वह हाथमें नंगी तलवार लिये अपने भाइयोंके साथ पाण्डवोंकी राजसभामें कुछ कठोर बातें कहता प्रविष्ट हुआ।

उस समय मय दानवद्वारा निर्मित राजसभामें धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाइयों तथा द्रौपदीके साथ बैठे थे। श्रीकृष्णचन्द्र भी उनके समीप ही विराजमान थे। दुर्योधनने मुख्य द्वारसे सभामें प्रवेश किया। मय दानवने उस सभाभवनको अद्भुत ढंगसे बनाया था। उसमें अनेक स्थानोंपर लोगोंको भ्रम हो जाता था। सूखे स्थल जलपूर्ण सरोवर जान पड़ते थे और जलपूर्ण सरोवर सूखे स्थल-जैसे लगते थे।

दुर्योधनको भी उस दिन यह भ्रम हो गया। वैसे वह अनेक बार उस सभामें आ चुका था; किंतु आवेशमें होनेके कारण वह स्थलोंको पहचान नहीं सका। सूखे स्थलको जलसे भरा समझकर उसने अपने वस्त्र उठा लिये। जब पता लगा कि वह स्थल सूखा है, तब उसे संकोच हुआ। लोग उसकी ओर देख रहे हैं, यह देखकर उसका क्रोध और बढ़ गया। उसने वस्त्र छोड़ दिये और

वेगपूर्वक चलने लगा। आगे ही जलपूर्ण सरोवर था। उसे भी उसने सूखा स्थल समझ लिया और स्थलके समान ही वहाँ भी आगे बढ़ा। फल यह हुआ कि वह जलमें गिर पड़ा। उसके वस्त्र भीग गये।



दुर्योधनको गिरते देखकर भीमसेन उच्चस्वरसे हँस पड़े। द्रौपदीने हँसते हुए व्यंग्य किया—‘अन्धेका पुत्र अन्धा ही तो होगा।’

युधिष्ठिरने सबको रोका; किंतु बात कही जा चुकी थी और उसे दुर्योधनने सुन लिया था। वह क्रोधसे उन्मत्त हो उठा। जलसे निकलकर भाइयोंके साथ शीघ्रगतिसे वह राजसभासे बाहर चला गया और बिना किसीसे मिले रथमें बैठकर हस्तिनापुर पहुँच गया।

इस घटनासे दुर्योधनके मनमें पाण्डवोंके प्रति इतनी घोर शत्रुता जग गयी कि उसने अपने मित्रोंसे पाण्डवोंको पराजित करनेका उपाय पूछना प्रारम्भ किया। शकुनिकी सलाहसे जुएमें छलपूर्वक पाण्डवोंको जीतनेका निश्चय हो गया। आगे जो हुआ और जुएमें द्रौपदीका जो घोर अपमान दुर्योधनने किया, जिस अपमानके फलस्वरूप अन्तमें महाभारतका विनाशकारी संग्राम हुआ, वह सब अनर्थ इसी दिनके भीमसेन एवं द्रौपदीके हँस देनेका

## नवीन प्रकाशन—छपकर तैयार

**संक्षिप्त नारदपुराण ( कोड 2131 ) ग्रन्थाकार ( गुजराती )**—इसमें सदाचार-महिमा, वर्णाश्रम धर्म, भक्ति तथा भक्तके लक्षण, विविध प्रकारके मन्त्र, देवपूजन, तीर्थ-माहात्म्य, दान-धर्मके माहात्म्य और भगवान् विष्णुकी महिमाके साथ अनेक भक्तिपरक उपाख्यानोंका विस्तृत वर्णन किया गया है। सचित्र, सजिल्द। मूल्य ₹२२० ( कोड 1183 ) हिन्दीमें भी उपलब्ध।

**श्रीप्रेम-सुधासागर ( कोड 2123 ) ग्रन्थाकार ( गुजराती )**—श्रीकृष्णलीला-रस-रसिक भक्तोंके मनको स्वस्थ वैचारिक पुष्टिहेतु गीताप्रेसद्वारा प्रकाशित तथा स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीद्वारा अनुवादित दशम स्कन्धका सरस शैलीमें यह भाषानुवाद है। मूल्य ₹१०० ( कोड 30 ) हिन्दी, ( कोड 1777 ) ओड़िआमें भी।

**गोरक्षा एवं गोसंवर्धन ( कोड 2132 ) गुजराती**—प्रस्तुत पुस्तकमें गोरक्षा एवं गोसंवर्धनकी शास्त्रीय आलोकमें विलक्षण व्याख्या की गयी है। मूल्य ₹१० ( कोड 1922 ) हिन्दीमें भी।

**रामरक्षास्तोत्रम् ( कोड 2134 ) पॉकेट साइज ( गुजराती )**—यह स्तोत्र आत्मरक्षाके साथ श्रीरामकी कृपा-प्राप्तिका प्रमुख साधन है। मूल्य ₹५ ( कोड 231 ) हिन्दी, ( कोड 1509 ) ओड़िआ, ( कोड 1643 ) अंग्रेजी, ( कोड 675 ) संक्षिप्त रामायणसहित तेलुगु और ( कोड 912 ) सटीक-तेलुगु, ( कोड 2053 ) नेपालीमें भी उपलब्ध।

**श्रीनारायणकवच ( कोड 2135 ) पॉकेट साइज ( गुजराती )**—प्रस्तुत पुस्तकमें प्रकाशित दोनों कवच श्रीमद्भागवत एवं स्कन्दपुराणसे संगृहीत किये गये हैं। मूल्य ₹ ५ ( कोड 229 ) हिन्दी, ( कोड 1024 ) तेलुगु एवं ( कोड 1069 ) ओड़िआमें भी उपलब्ध।

**मनुष्य-जीवनका उद्देश्य ( कोड 994 ) तेलुगु**—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्रवचनोंसे संकलित इस पुस्तकमें निःस्वार्थ सेवा, भगवान्के स्वरूपका ध्यान आदि विभिन्न प्रकरणोंके माध्यमसे परमार्थपथकी सुन्दर व्याख्या की गयी है। मूल्य ₹१५ ( कोड 1653 ) हिन्दी, ( कोड 1717 ) मराठीमें भी।

**भगवत्प्राप्ति कैसे हो ? ( कोड 997 ) तेलुगु**—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्रवचनोंसे संगृहीत इस पुस्तकमें मन, सुगम भक्ति, वैराग्यकी महिमा आदि चौबीस प्रकरणोंके माध्यमसे भगवत्प्राप्तिके उपायोंकी सरल व्याख्या की गयी है। मूल्य ₹१५ ( कोड 1747 ) हिन्दीमें भी उपलब्ध।

**त्यागकी महिमा ( कोड 996 ) तेलुगु**—परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्रवचनोंसे संकलित इस पुस्तकमें त्यागका महत्त्व, सर्वभूतहिते रताः, निरन्तर भजन कैसे करें आदि १८ विषयोंके द्वारा भगवान्की भक्तिकी महत्तापर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। मूल्य ₹१५ ( कोड 1791 ) हिन्दीमें भी उपलब्ध।

**शान्तिका उपाय ( कोड 995 ) तेलुगु**—प्रस्तुत पुस्तकमें भगवत्प्रेम ही साध्य है, ध्यानकी विधि आदि विविध विषयोंके माध्यमसे आध्यात्मिक सुख-शान्तिकी अनुपम व्याख्या की गयी है। मूल्य ₹२० ( कोड 1792 ) हिन्दीमें भी उपलब्ध।

**श्रीमद्भगवद्गीता [ नगमा-ए-इलाही ] ( उर्दू-तर्जुमा ) नागरी लिपिमें—पुस्तकाकार ( कोड 2133 )**—उर्दू ज़बानकी यह एक छोटी-सी पुस्तक नागरी लिपिमें प्रकाशित की गयी है। इसमें सम्पूर्ण गीताका सरस एवं सरल अनुवाद किया गया है। यह पुस्तक उर्दू ज़बान जाननेवाले गीता-प्रेमियोंके लिये उपयोगी सिद्ध होगी। मू० ₹ २०

### श्रीगङ्गाजीपर—गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित पुस्तकें

**गङ्गालहरी ( कोड 699 ) पॉकेट साइज**—इस पुस्तकमें कलिकल्मष-विनाशिनीपुण्यतोया भगवती गङ्गाके स्तोत्रका सानुवाद प्रकाशन किया गया है। मूल्य ₹४

**श्रीगङ्गासहस्रनामस्तोत्रम् नामावलि सहितम् ( कोड 1709 ) पॉकेट साइज**—यह परम पवित्र स्तोत्र पाठकर्ता भक्तोंको सुख, यश और विजय देनेवाला तथा स्वर्गका प्रदाता है। मूल्य ₹८

**गङ्गा-अङ्क ( कोड 2035 )**—सन् 2016 का विशेषाङ्क 'गङ्गा-अङ्क' (जिसके साथ कोई मासिक अङ्क देय नहीं है), अब पुस्तक रूपमें सीमित संख्यामें उपलब्ध है। मूल्य ₹१३०

[ २४ मई, दिन गुरुवारको श्रीगङ्गादशहरा है। ]



**COLLECTION OF VARIOUS**  
-> **HINDUISM SCRIPTURES**  
-> **HINDU COMICS**  
-> **AYURVEDA**  
-> **MAGZINES**

**FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)**

**Made with**



**By**

**Avinash/Shashi**

**I creator of  
hinduism  
server!**



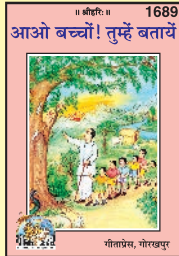
**KAPWING**



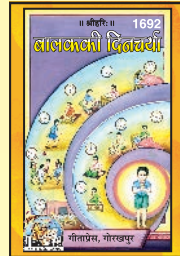
## गीताप्रेससे प्रकाशित बाल-साहित्य ग्रन्थाकार रंगीन चित्रोंके साथ



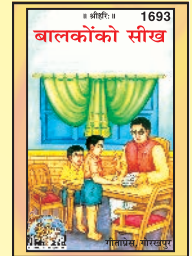
कोड 1690 ₹३५



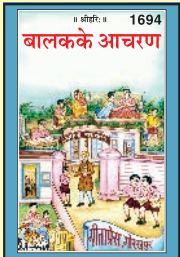
कोड 1689 ₹२५



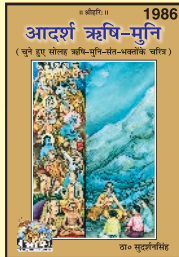
कोड 1692 ₹२५



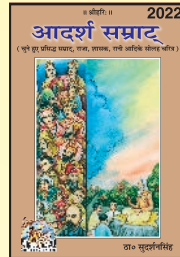
कोड 1693 ₹२५



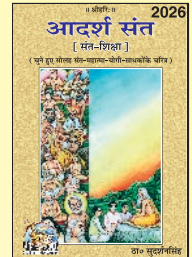
कोड 1694 ₹२५



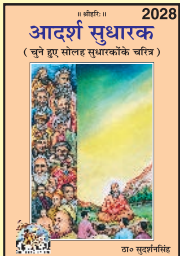
कोड 1986 ₹२५



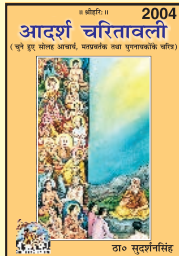
कोड 2022 ₹२५



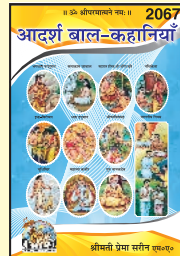
कोड 2026 ₹२५



कोड 2028 ₹२५



कोड 2004 ₹२५



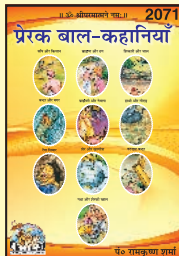
कोड 2067 ₹२५



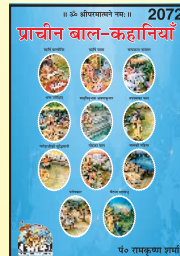
कोड 2068 ₹२५



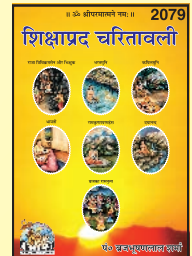
कोड 2070 ₹२५



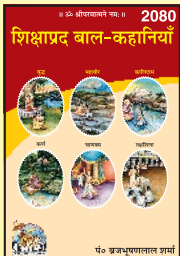
कोड 2071 ₹२५



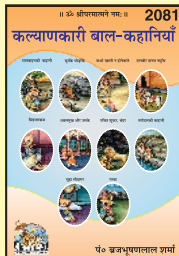
कोड 2072 ₹२५



कोड 2079 ₹२५



कोड 2080 ₹२५



कोड 2081 ₹२५

उपर्युक्त १८ पुस्तकें एक साथ मँगवानेपर पुस्तक मूल्य ₹ ४६०, रजिस्टर्ड डाक एवं पैकिंग खर्च मुफ्त। टोटल ₹ ४६० भिजवाकर १ सेट बाल-साहित्य मँगवा सकते हैं। इसमें विभिन्न विषयोंपर बालकोंको सुन्दर एवं व्यावहारिक शिक्षा दी गयी है।

यह योजना १५ अगस्त २०१८ तकके लिये है।